ISSN NUMBER : 2455-9717
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

# शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 1, अंक : 4
त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2017
मूल्य : 50 रुपये

दिल की गहराई से चाहो,
फूल को, पत्ती को
और फुदकती-कूदती तितली को।
कुछ देर फूल को सहलाओ,
पत्ती को पुचकारो,
देखोगे तुम,
आहिस्ता से आ बैठेगी
तुम्हारी हथेली पर तितली;
बिल्कुल वैसे ही,
जैसे किसी अनजान अजनबी
बच्चे की ओर
निष्कपट भाव से देखो,
मुस्कराओ;
तो पाओगे
बच्चा भी तुम्हें उसी भाव से
देखेगा।
-लालित्य ललित

# शिवना प्रकाशन : वर्ष 2017 नए सेट की पुस्तकें

## नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला, प्रगति मैदान 2017 में लोकार्पण

## दिनांक : 10 जनवरी 2017, सुबह 11 बजे, लेखक मंच हॉल क्र. 12 ए

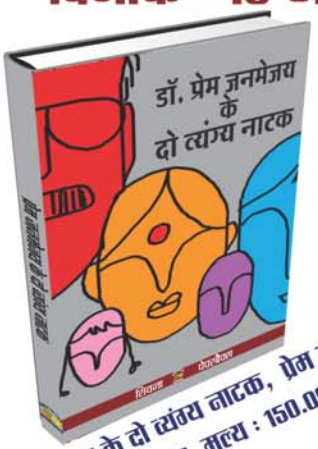


डॉ. प्रेम जनमेजय के दो व्यंग्य नाटक, प्रेम जनमेजय
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 150.00 रुपये

बिसात (कहानी संग्रह) राकेश बिहारी
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 200.00 रुपये

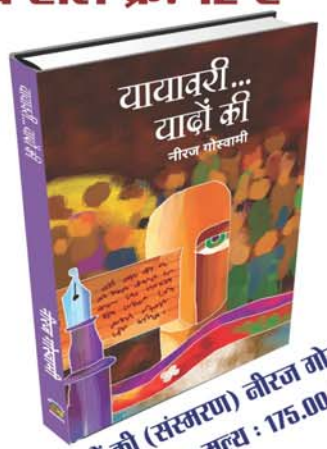


यायावरी... यादों की (संस्मरण) नीरज गोस्वामी
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 175.00 रुपये

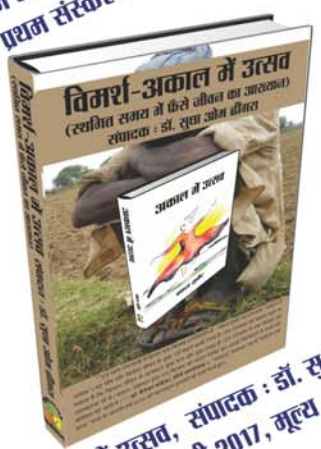


विमर्श-अकाल में उत्सव, संपादक : डॉ. सुधा ओम ढींगरा
प्रथम संस्करण : जनवरी 2017, मूल्य : 250.00 रुपये

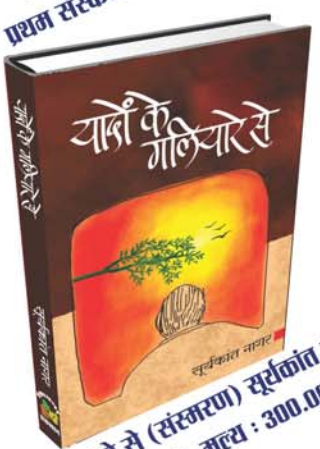


यादों के गलियारे से (संस्मरण) सूर्यकांत नागर
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 300.00 रुपये

पार्थ...! तुम्हें जीना होगा (उपन्यास) ज्योति जैन
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 175.00 रुपये

स्मृतियों में रमते हुए (समग्र) डॉ. श्रीमती कमल चतुर्वेदी
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 250.00 रुपये

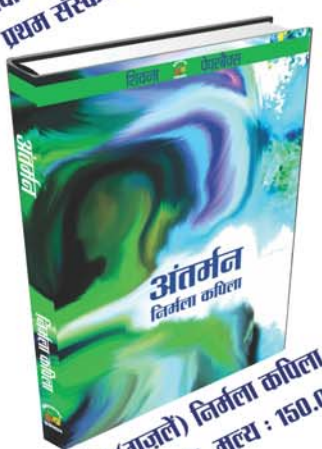


अंतर्मन (ग़ज़लें) निर्मला कपिला
पहला संस्करण : 2017, मूल्य : 150.00 रुपये

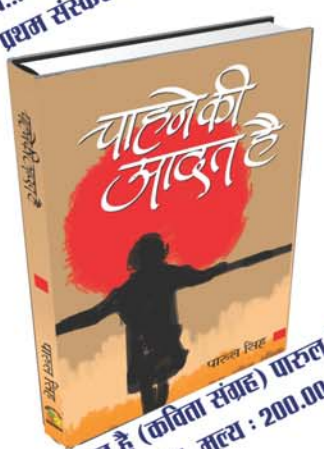


चाहने की आदत है (कविता संग्रह) परुल सिंह
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 200.00 रुपये

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक
**सुधा ओम ढींगरा**
●
प्रबंध संपादक
**नीरज गोस्वामी**
●
संपादक
**पंकज सुबीर**
●
कार्यकारी संपादक
**शहरयार**
●
सह संपादक
**पारुल सिंह**
●
आवरण चित्र
**पल्लवी त्रिवेदी**
●
डिज़ायनिंग
**सनी गोस्वामी**
●

**संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय**
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
ऑनलाइन 'शिवना प्रकाशन'
http://shivnaprakashan.blogspot.in
फेसबुक पर 'शिवना प्रकाशन'
https://facebook.com/shivna prakashan
●
एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)
1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)
बैंक खाते का विवरण :
BANK OF BARODA
Name: Shivna Prakashan
Bank Name: Bank Of Baroda
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000255
IFSC Code: BARB0SEHORE

शिवना साहित्यिकी
**वर्ष : 1, अंक : 4**
**त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2017**
**RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929**
**ISSN : 2455-9717**

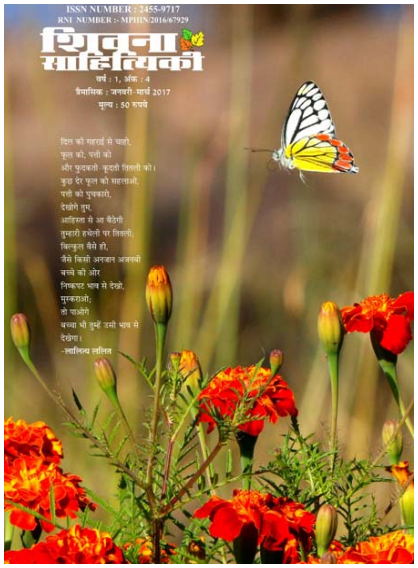


कुछ यूँ...
**आवरण कविता**
लालित्य ललित
**संपादकीय**
शहरयार / 4
**व्यंग्य चित्र**
काजल कुमार / 5
**संस्मरण**
नासिरा शर्मा / 6
**कविताएँ**
कुछ कविताएँ सरहद पार से..
ज़ेबा अल्वी / 10
**कहानी**
दिलों की एक आवाज़ ऊपर उठती हुई ...
मुकेश वर्मा / 12
**आलोचना**
राकेश बिहारी / 14
**फिल्म समीक्षा के बहाने**
दंगल
वीरेन्द्र जैन / 17
**पुस्तक-आलोचना**
सत्कथा कही नहीं जाती, क्यों?
संतोष चौबे / 21
**डायरी**
धरमिंदर पाजी दा जवाब नहीं
नीरज गोस्वामी/25
**पेपर से पर्दे तक...**
कृष्णकांत पंड्या / 27
**यात्रा-वृत्तांत**
अंडमान निकोबार द्वीप
संतोष श्रीवास्तव/ 29
**समीक्षा**
महेश दर्पण/ डेक पर अँधेरा / 31
सरिता शर्मा / पृथ्वी को हमने जड़ें दीं / 38
जया जादवानी/ नक़्क़ाशीदार केबिनेट/ 41
हृदेश सिंह/ वाबस्ता / 42
**महत्त्वपूर्ण पुस्तकें**
तीन विधाएँ, तीन लेखक, तीन पुस्तकें / 43
**पड़ताल**
शिवना पुस्तक विमोचन समारोह / 45
तरही मुशायरा / 48

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

# संपादकीय

## न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम

**शहरयार**

विश्व पुस्तक मेले से लौटा और दुख लेकर लौटा। दुख यह कि अंग्रेज़ी की पुस्तकों पर जिस प्रकार युवा वर्ग टूट पड़ रहा था, वह दृश्य हिन्दी की पुस्तकों के स्टॉल्स पर दिखाई नहीं दिया। हालाँकि यह एक पुराना रोना है लेकिन फिर भी आज इसे रोने की इच्छा हो रही है। हिन्दी के स्टॉल्स पर लेखकों की ही भीड़ दिखाई दे रही थी। जिस स्टाल पर जिस लेखक की पुस्तक आई है, वहाँ उसके कुछ मित्र, प्रशंसक जुटे हुए नज़र आए, जो पाठक बनकर पुस्तक ख़रीद भी रहे थे। यह सचमुच ही एक कठिन स्थिति है। यदि है तो उसके पीछे कुछ तो कारण होंगे ही। मुझे ऐसा लगता है कि हिन्दी के लेखक ने जब से पाठक के लिए लिखना छोड़ दिया, तब से ही पाठक ने भी हिन्दी के लेखक को पढ़ना छोड़ दिया। पिछले दिनों भोपाल में आयोजित एक कार्यक्रम में हिन्दी के एक वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार ने अपने भाषण में कहा कि- 'मेरे विचार में साहित्य को बहुत कठिन और दुरूह होना चाहिए, तभी वह महान् हो सकता है।' इस एक बात में ही हिन्दी की पुस्तकों के स्टॉल्स पर से ग़ायब पाठक का कारण छुपा हुआ है। तो हमें पहले तो यह ही तय करना होगा कि हमारा लेखन किसके लिए है ? हमारे स्वयं के लिए या पाठक के लिए ? यदि हमारे अपने ही लिए है तो फिर तो पाठक की घटती संख्या पर चिंतित होने की कोई बात ही नहीं है, आप उसके लिए लिख ही कब रहे हैं। आप तो स्वांत: सुखाय लिख रहे हैं। अपने लिए ही लिख रहे हैं तो अब पढ़िए भी स्वयं ही, पाठक की प्रतीक्षा क्यों कर रहे हैं। बात का अलग अर्थ न लग जाए इसलिए यह ज़रूर स्पष्ट करना चाहूँगा कि मैं लोकप्रिय साहित्य की हिमायत नहीं कर रहा हूँ, मैं तो यह कह रहा हूँ कि ऐसा गम्भीर साहित्य भी तो रचा जा सकता है, जो कठिन और दुरूह न हो। जो पाठक को कम से कम समझ में तो आए। प्रेमचंद, रेणु, से लेकर राजेंद्र यादव, कमलेश्वर तक इन सब लेखकों ने क्या लोकप्रिय साहित्य रचा था, जो इन्हें इतनी बड़ी संख्या में पाठक मिले? नहीं इन्होंने गम्भीर साहित्य ही रचा था, लेकिन पाठक को समझ में आ सकने वाला गम्भीर साहित्य रचा था। पुस्तक मेले में इनकी पुस्तकें आज भी बिकती हैं। फिर उसी बात पर लौटता हूँ कि साहित्य को क्यों कठिन और दुरूह होना चाहिए। फिर तो सम्प्रेषणीयता शब्द को साहित्य के शब्दकोश से तो हटा ही दिया जाना चाहिए। और उस वाक्य को भी तुरंत ही ख़ारिज कर दिया जाना चाहिए जो कहता है 'संप्रेषणीयता साहित्य का पहला गुण है।' कठिन होकर हम अपने ही पाठक से दूर होते जा रहे हैं, फिर शिकायत कैसी?

कला और लोकप्रियता के ठीक बीच ही कोई संगम बिंदु है जहाँ खड़े होकर रचनाकार को अपना कार्य करना चाहिए। थोड़ा सा कला के पक्ष में झुककर कार्य तो करना ही होगा। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यदि रचना 'गुण' है तो रचना का आस्वाद लेने वाला पाठक, श्रोता, दर्शक उसका 'गुण ग्राहक' है। इन दोनों का ही होना आवश्यक है। आख़िर को आप मंगल ग्रह पर बैठ कर तो लेखन कर नहीं रहे हैं, जहाँ कोई भी आपके लिखे को पढ़ने वाला नहीं है। आप क्यों यह सोचते हैं कि पाठक की कोई पसंद नहीं हो सकती, जो कुछ आप लिख (थोप) देंगे उसे तो वह पढ़ना ही है। उसे यदि समझ में नहीं आ रहा है, तो यह आपकी समस्या नहीं है, यह बुद्धि के स्तर पर उसकी समस्या है। चलिए मान लिया कि उसकी ही समस्या है, तो फिर यदि वह इसी समस्या के चलते आपको पढ़ना छोड़ दे, तो उस पर विलाप भी नहीं करना चाहिए। पिछले दो-तीन दशकों में कला की हर विधा में दुरूहता बढ़ती गई है। और यह इसलिए बढ़ी क्योंकि जितनी दुरूहता बढ़ी, उतनी ही महानता बढ़ी। फिर चाहे वह साहित्य हो, शिल्प हो या फिर चित्रकला हो। धीरे-धीरे लोक को बेदख़ल कर दिया गया। एलीट क्लास के लिए कलाएँ आरक्षित होती चली गईं। हिन्दी साहित्य के लिए मुश्किल यहीं से खड़ी हो गई। शिल्प, चित्रकला, सिनेमा इनका गुणग्राहक तो एलीट क्लास में मिल गया, किन्तु हिन्दी साहित्य को नहीं मिला, क्योंकि हिन्दी और एलीट क्लास तो दो विपरीत ध्रुवों पर खड़े थे। शिल्प और चित्रकला की तो कोई भाषा नहीं होती न। एलीट क्लास को अपना स्टेटस बनाए रखने के लिए दुरूहता ही चाहिए थी, ऐसा चित्र या मूर्ती जो किसी की समझ में न आए, उसके ड्राइंग रूम में लगते ही एलीटनेस में इज़ाफ़ा हो जाता है। लेकिन हिन्दी पुस्तक उस मखमल में टाट का पैबंद लगा देती है, इसलिए उसका प्रवेश वहाँ वर्जित है। एक कहावत याद आती है 'दोई दीन से गए पांडेजी' या फिर 'न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम'। देखा-देखी में लोक और पाठक से पल्ला झाड़ कर जिस सजे-धजे ड्राइंग रूम में सजने का ख़्वाब हिन्दी पुस्तक ने देखा था, वह तो पूरा हुआ नहीं ऊपर से बरसों का जमा-जमाया भदेस पाठक हाथ से चला गया। देखिए, वह बहुत दूर नहीं गया है अभी.....।

**आपका अपना,**

**शहरयार** (shaharyarcj@gmail.com)

# व्यंग्य-चित्र

काजल कुमार

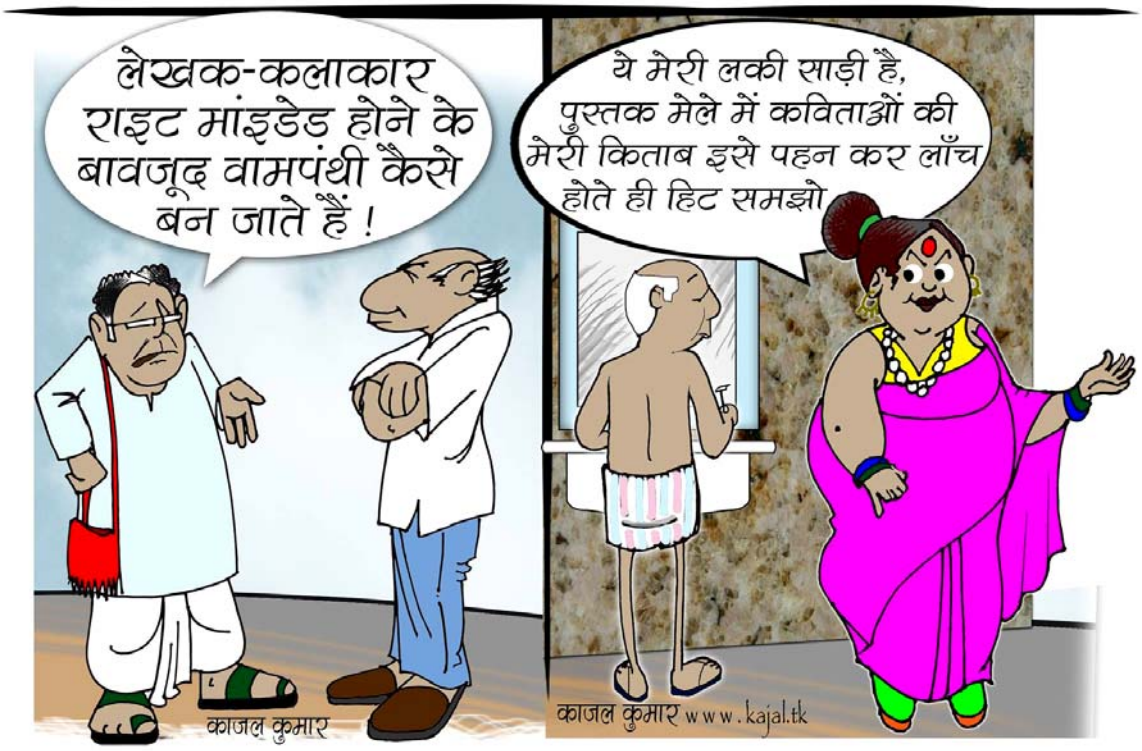

संस्मरण

# उड़ान भरने को तैयार लड़की

नासिरा शर्मा
( सौजन्य : गीताश्री )

*( वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार नासिरा शर्मा जी को वर्ष 2016 का साहित्य अकादमी पुरस्कार उनके उपन्यास पारिजात हेतु दिए जाने की घोषणा की गई है, शिवना साहित्यिकी की ओर से उनको बहुत-बहुत बधाई। युवा कथाकार गीताश्री के सौजन्य से प्राप्त नासिरा शर्मा जी का यह अप्रकाशित संस्मरण शिवना साहित्यिकी के पाठकों हेतु।)*

आपको एक क़िस्सा सुनाती हूँ!

बात बहुत पुरानी नहीं सिर्फ बारह साल पहले की है मगर ज़हन में उसकी याद आज भी ताज़ा कटी घास की गंध की तरह बसी हुई है।

गर्मी के दिन थे। बजे होंगे सुबह के ग्यारह। देखती क्या हूँ, जाली के दरवाज़े के पीछे एक दो-ढाई साल की बच्ची अपनी बुआ की उँगली पकड़े खड़ी है मैंने आगे बढ़ कर दरवाज़ा खोला।

''ओह! तो यह वफ़ा हैं?'' मैंने हँस कर कहा तो वह अपनी बुआ से और सट गई। मुझे उसे देखकर उस छोटी-सी वफ़ा का ख़्याल आया जो रेश्मी सफ़ेद मुलायम चमकीले कपड़े की फ्राक पहने हबीब की गोद में आई थी। खाने के वक़्त उसे चाबी का गुच्छा खेलने को देकर माँ-बाप खाने की मेज़ की तरफ चले गए। वह चाबी का गुच्छा मुँह में डाले चाबियाँ चूस रही थी मुझे यह देखकर परेशानी-सी लग रही थी जब बहला कर मैं कुंजी का गुच्छा ले उसको कोई और चीज़ थमाती वह पूरे बिस्तर पर लोट कर ऐसी चीख़ें मारती कि मैं घबरा कर उसको गुच्छा वापस कर देती। लेसी सफेद जाघियाँ के बीच से निकली दोनों टाँगें ग़ज़ब का ब्लैक एण्ड व्हाइट कनट्रास्ट दे रही थीं। पैरों में पायल, हाथों में सोने की चूड़ियाँ, गले में हार और उँगली में नन्ही-सी अँगूठी थी बस कान ख़ाली थे जो बालों से ढँके थे। मेरा लगातार उसे देखकर मुस्कुराना बजाए मेरे क़रीब लाने के उसे मुझसे दूर ले जा रहा था। वह धीरे-धीरे कुछ कह रही थी।

''चलते हैं, तुम बिस्कुट खाओ।'' फूफी धीरे से कहतीं, मगर वह उनकी साड़ी का पल्लू पकड़े बैठी रही।

इस वक्त उसके बदन पर सूती फ्राक थी। वह सारे सुंदर तोहफ़े उसके पापा के सऊदी से लाए उपहार थे अब वह गाँव से आई थी ताकि पापा के साथ दिल्ली में रह सके जो विदेश की नौकरी छोड़ चुके थे।

वफ़ा लगभग रोज़ किसी न किसी के साथ मिलने आती मगर जब तक रहती तब तक घुटती रहती थी। उसका नाम नर्सरी में लिखवाना था। उसके पापा को चिंता थी कि यह भोजपुरी के अलावा कोई और भाषा बोल नहीं पाती फिर इसका दाख़िला होगा कैसे? वफ़ा की मम्मी उससे भोजपुरी में बात करतीं थी। वह भी ऐसी गाढ़ी भोजपुरी में बातें होती जो अकसर उस के पापा को भी समझ में नहीं आती थी। हबीब अब बच्चों को देख चुके थे। उनका अरमान था कि बेटी उसी तरह रहे और सुंदर लगे। पढ़े और आगे बढ़े। कुछ दिन इसी तरह गुज़र गए।

आख़िर एक दिन हबीब ने अपने सीने में दबी ख़्वाहिश अपनी भाभी से कह दी। बात मेरे कानों तक पहुँची। मुझे बच्चे वैसे ही प्यारे लगते हैं, मुझे उसे अपने साथ रखने में क्या ऐतराज़ हो सकता था बशर्ते कि वह मेरे साथ रह सके। नया मकान हमारा छत्तरपुर में था। नौकर मिले नहीं थे। खाना पकाने से सफाई करने वाले माली नौकर पीछे छूट गए थे मगर वह मुझसे बराबर मिलने आते। मकान में कुछ अधूरे काम पड़े थे जो साथ-साथ चल रहे थे। उसी में मेहमानदारी और लंबी छुट्टी गुज़ारने वाले रिश्तेदार भी ताता बाँधे हुए थे। बेटा बसंत बिहार में रह रहा था।

वफ़ा से मेरी दोस्ती शुरू हुई मगर उसकी तरफ से कोई रिस्पांस न मिलता सिवाए एक जुम्ले के ''अब अपने घरे जाई?'' मगर पिता का सख़्त आर्डर था कि इसको एक हफ्ते मम्मी के पास रहना है। मेरा घर उसके लिए गुरूकुल था। नौहे, शेर, कविता क्या नहीं था जो मैं उसकी नन्हीं ज़बान से न कहलवाती और उर्दू-हिंदी शब्द का उच्चारण तो वह कर लेती मगर कुछ चीज़ें अपनी वॉकेबलरी के मुताबिक़ कहती तो मैं खिलखिला कर हँस देती जैसे ''मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।'' और वह सुनाती ''मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैग रखना'' पता नहीं किस शरारती मूड में मैंने मियाँ चिरकीन का एक शेर उसे याद करा दिया -मियाँ चिरकीन जब कपड़े बदलते थे, बजाए इत्र के वह मूत्र मलते थे। शाम को जब वफ़ा का पूरा खानदान उससे मिलने आता तो वफ़ा को सीढ़ियों के बीच छोटे से चबूतरे पर खड़ा कर स्टेज बनता और वह अपनी कविता, नज़्में सुनाती थी। सब तालियाँ बजाते। वह यह सब सिर्फ एक बात के लिए कर रही थी जिस तरह एक क़ैदी अपनी आज़ादी के लिए बेचैन रहता है।

मुझे नहीं पता था कि एक दिन वह मियाँ चिरकीन का शेर भी सुना देगी ''बचाए इत्र के वह मूत्र मलते थे।'' उसके मलने शब्द पर मैं हँस दी मगर उसकी बुआ और चचा के जो बच्चे, लड़के यहाँ पढ़ रहे थे, उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह यह शेर सुन कर

कैसे रिएक्ट करें। यही शेर जब काफी दिनों बाद उसने अपने ताया को भी सुनाया तो उसको बताना पड़ा कि मूत्र का मतलब क्या होता है। इसके बाद उसने वह शेर अपने 'स्टेज शो' में सुनाना बंद कर दिया।

एक दिन मैंने कहा ''वफ़ा तुम क्यों बेचैन रहती हो? यह कौव्वा रोज़ आता है कुछ खाता-पीता है और उड़ जाता है। क्यों न तुम इससे शादी कर लो और उसके संग जब चाहना उड़ कर मम्मी से मिल आना।'' उसकी आँखों में जैसे चमक आ गई और पहली बार चहक कर बोली ''कर लेब।''

उसका दिमाग कौव्वे में उलझ गया बल्कि कहना चाहिए बँट गया और वह इत्तला देती, कौव्वा आ गया, कौव्वा उड़ गया। उन्हीं दिनों मुंबई से डॉ. शर्मा के भतीजे आए। खाने की मेज़ पर चहकती हुई उन्हें बताती कि मैं कौव्वे से शादी करने वाली हूँ। उन्होंने भी बातचीत आगे बढ़ाते हुए कहा - ''अच्छा! मैं तो तुम्हें अपने साथ मुंबई ले जाने की सोच रहा था।'' यह वाक्य उसके लिए उम्मीद का एक नया दरवाज़ा खोल गया। जैसे ही मैं मेज़ से उठी, वह फौरन बोली ''मैं आपके साथ चलूँगीं फिर वहीं से घर चली जाऊँगी मम्मी लगे।''

एक दिन वह ग्रीनरूम के पास पड़ी कुर्सी पर बैठी 'ए,बी,सी' पढ़ रही थी। मैं बेडरूम में थी। अन्नी अपने जर्मन शेफर्ड के साथ लॉबी में दाख़िल हुए और मैं कमरे से निकली। कुत्ता जैसे ही लॉबी में घुसा उसे देखकर वफ़ा की जो हालत हुई वह इतनी मज़ाकिया थी कि आज भी उसे याद करके हँसी आती है। मगर उस वक़्त उसे डर से निकालने के लिए मैंने उसे लिपटा कर थपकी दी। पैकेट का खाना, विटामिन्स बिस्कुट खाने वाला कुत्ता घर में घुसते ही किचन में जाता और डस्टबिन को उलट देता। अन्नी इस हरकत से दुखी, झुझलाएँ, उसे पकड़ते और कहते कि सब इस बेचारे से डरते हैं, उन्हें नहीं पता यह कुत्ता बहुत फ्रेंडली और सोशल होता है। चौराहे पर पानी भरती औरतें इसको देख चीखने लगी। बच्चे भागने लगे। ''असली बात है कि उन लोगों का लगाव सिर्फ देसी कुत्ते तक है।'' मैंने भी मज़ा लिया।

''अन्नी! इसको 'आदाब करना' कब सिखाओगे?''

''वह आपका ज़िम्मा है।''

खैर कुछ लम्हे बाद टीपू ने दो पैरों पर खड़े होकर सबको नमस्ते किया, सब उसे प्यार 'दुलार' दिखाते हँस रहे थे मगर वफ़ा का नन्हा-सा दिल इंजन की तरह अभी भी शोर कर रहा था।

हफ्ता गुज़र गया। दूसरा शुरू हो गया।

वफ़ा थोड़ा बहुत हिंदुस्तानी ज़बान बोलने लगी। शायद मजबूर थी इस नए वातावरण में जहाँ न उसके स्वाद का खाना था, न बोली, न चेहरे, न ही भरा पूरा परिवार और साथ खेलने वाले बच्चे! उसकी तकलीफ़ मैं अंदर तक महसूस कर रही थी मगर उसके एडमीशन की समस्या तो हल करनी थी। आख़िर वह दिन आ ही गया जब मैं अलग मूड में थी।

वफ़ा के बुआ का बेटा किसी काम से आया। वफ़ा भोजपुरी में कुछ कह रही थी। फारूख ने चलते हुए कहा ''वफा साथ चलने की ज़िद कर रही है।''

''तो ले जाओ?'' मेरे इस सहजता से कहने का वह दोनों कुछ और मतलब निकाल बैठे। समझे मैं ग़ुस्सा होकर कह रही हूँ। वफ़ा की आँखों में घोर निराशा की ऐसी उदासी भय के साथ उभरी कि मुझे हँस कर कहना पड़ा ''जाओ। कह तो रही हूँ।'' मैं बता नहीं सकती उस ढाई साल की बच्ची की जो दबी-दबी मुस्कान उसके मासूम होंठों पर उभरी और काली आँखों में एक साथ प्यार, धन्यवाद और अपनाइयत की किरणें फूटी, उस हल्की मिठास का बयान मेरे शब्द नहीं कर सकते।

उस दिन से वफ़ा ने मेरी दोस्ती, ममता, टीचर वाली सख़्ती को सिर्फ क़ुबूल ही नहीं किया बल्कि जो काम मैं दस पंद्रह दिनों की कोशिशों में न कर पाई वह अचानक एक लम्हे में हो गया। फिर तो वफ़ा बड़ी खुशी से आती और माँ के साथ लौट जाती। माँ शिकायत करती कि वहाँ बड़ी मुश्किल से एक रोटी खाती है। अब मैं क्या बताती कि वह खाने की मेज़ पर राम के दहिने तरफ बैठ कर आराम से दो फुल्के खाती है। सारे दिन फूलों की क्यारी, आँवले के पेड़ के चारों तरफ घूम-घूम कर गाना गाती तो कभी कविता पढ़ती। उसकी आवाज़ मीठी, धीमी और लोचदार थी।

वफ़ा दरअसल एक संयुक्त परिवार, सीवान ज़िला के गोपालगंज के सिद्दिक़ी परिवार के पाँचवे बेटे की पहली औलाद थी। सिद्दिक़ी परिवार उस इलाके में इज़्ज़त की नज़रों से देखा जाता। जहाँ शिक्षा, जायदाद और परंपरागत बिहारी समाज का ताना-बाना था। लड़कियाँ भी शिक्षा प्राप्त कर रही थीं मगर सब कुछ उस इलाक़े की सरहद में ही, वहाँ जो मौजूद था उसके अनुसार चल रहा था। जहाँ धार्मिक शिक्षा थी वहीं अंग्रेज़ी स्कूलों की पढ़ाई भी थी। खानदान से जो पटना से निकल दिल्ली की तरफ आया तो उसे महसूस हुआ इश्क़ के इम्तेहान और भी हैं। बिहार प्रांत से मज़दूर तकनीशियन, डॉक्टर, इंजीनियरों का जाना जहाँ कलकत्ता की ओर होता था अब भारत के विभिन्न शहरों और मध्यपूर्व के सभी देशों में हो गया; जिस में मुख्यधारा से जुड़ने की संभावना और ललक जाग उठी थी। वफ़ा के पापा भी विदेश यात्रा के बाद अपनी बेटी के लिए एक ख़ूबसूरत सपना देख रहे थे।

इस नए घर में दोपहर में अकेली मैं रह जाती थी। डॉ. शर्मा विश्वविद्यालय या मीटिंगें, बेटी अपने ऑफिस। अचानक मेरी तबीयत ख़राब हो जाने की वजह से सभी परेशान थे कि मेरे पास कौन रुकेगा। तय पाया कि वफ़ा को छोड़ दिया जाएगा मेरे पास ताकि घंटी बजने पर वह पूछ सके कि कौन आया। कोरियर और पार्सल मय डाकिया मुझ तक पहुँच जाएगा ताकि मैं हस्ताक्षर कर सकूँ। मैं कुछ लिखती-पढ़ती, वफ़ा अपनी ए.बी.सी. का अभ्यास करती या फिर तस्वीरों में रंग भरती। एक दिन वफ़ा नहीं आई।

रोज़ उसे छोड़ने कोई न कोई आता था। कुछ देर बाद मैं किचन में गई तो मुझे लगा जैसे कोई बाहर है, ख़ास कर दरवाज़े के पास। बाहर निकल कर दरवाज़ा खोला तो देखा, वफ़ा है।

''कब आई?'' मेरे पूछने पर उसने

जवाब नहीं दिया। आज वह फ्राक की जगह बैंगनी शलवार दुपट्टा और आँखों पर गॉगल्स लगाए थी शायद यह कपड़े किसी फूफी ने उसके लिए भेजे होंगे। मेरे चेहरे पर मुस्कान उभरी वह ठीक फिल्म एक्ट्रेस शकीला का छोटा मॉडल लग रही थी। उसके चेहरे पर पसीना था। अंदर लाकर मैंने उसे जैम और टोस्ट दिया फिर बिखरे तार जोड़ने लगी। वफ़ा के पापा ने उसे लेन के शुरू में छोड़ दिया होगा। शायद विश्वास पैदा करने के लिए और कुछ देर उसे जाते देखने के बाद वह ऑफिस निकल गए होंगे मगर वह यह भूल गए थे कि उसके हाथों की ऊँचाई दरवाज़े पर लगे हुक तक नहीं पहुँच सकती थी न घंटी तक। उसकी हल्की-हल्की दस्तक अंदर के कमरे तक पहुँची न होगी। फ़ोन पर बात की तो पता चला वह ठीक दस बजे आई थी। घड़ी देखा जहाँ बारह बज रहे थे। पूरे दो घंटे वह धूप और छाँव के बीच खड़ी रही न रोई, न चीख़ी। अंदर आकर उसने अपना काम करना शुरू कर दिया। उसके रंगों के शेड को देखकर मैं ताज्जुब करती कि इसके अंदर की दुनिया कितने सूफ़ियाना रंगों से बनी है।

''देखो घंटी बजी है?'' दूसरे दिन की बात है। उसने लॉबी की जाली से पूछा।

''कौन साहब हैं?''

''आपका नाम क्या है?''

''अंदर आ जाइए!''

''पानी लेंगे?''

''अम्मा जान अंदर हैं।''

डाकिया अंदर आकर कहता ''बेहद प्यारी बच्ची है। पूछ रही थी, कौन साहब है?''

एक दिन मैं लिखने में ऐसी डूबी कि भूल गई वफ़ा को लंच देना। क़लम बंद किया तो याद आया। घड़ी देखी, शाम के चार बज रहे थे। वफ़ा से पूछा 'भूख लगी है? माँगा क्यों नहीं?'' उसने कोई जवाब नहीं दिया और मेरे पीछे-पीछे किचन में आई। खाने की मेज़ पर हम आमने-सामने बैठ गए। पता नहीं कैसे मेरे ज़हन में एक नाम उभरा काली चींटी- हाँ यह बिल्कुल काली चींटी है। मेरे बचपन की काली चींटी! जब मैंने उसे इस नाम से पुकारा तो वह हँस पड़ी। उसने तब तक न काली चींटी देखी थी न ही यह नाम सुना था मगर मेरे लहजे की मिठास और आँखों में तैरते प्यार की भाषा उसने पढ़ ली और सोच लिया होगा कि यह कोई बेहद प्यारा संबोधन होगा। इसके बाद जब मैं उसे पुकारती वह किसी हिरणी के छौने की तरह कुलाचें भरती मेरे पास पहुँची और खिले फूल की तरह हँसती ''जी अम्मा जान!''

***

कुछ दिनों बाद वफ़ा हमारे साथ रहने लगी। तीन साल से वह मेरी किताबों को रखना, कागज़-क़लम को सँभालना अपने आप मेरा देखा-देखी करने लगी। नर्सरी में दाख़िला मिल गया। रिपोर्ट आई कि इस बच्ची को इतना कुछ आता है कि ताज्जुब होता है। कुछ महीनों बाद टीचर ने पूछा ''यह अम्माजान कौन है? वफ़ा उनकी बहुत बातें करती है।''

एक दिन वफा ने इत्तला दी - ''अम्माजान आज हमारे यहाँ खरगोश बन रहा है।''

''खरगोश?'' खरगोश खाना मना है मैंने चौंक कर उसकी तरफ देखा फिर एकाएक मैं हँस पड़ी। ''खरगोश, नहीं गोश्त कहते हैं।'' वह शरमा गई।

''आज क्या-क्या किया?''

''सफाई''

''वाह भई वाह! इस बात पर तो केक खाना बनता है।'' घर में बेक किए केक का वह टुकड़ा बाहर लान में घूमते हुए खाने लगी, मगर शाम तक जो ख़बर मिली वह ख़ासी दिलचस्प थी। वफ़ा ने घर का टीवी पानी से धो डाला था। खेल-खेल में वफ़ा माँ के रात के उतारे ज़ेवर की दुकान लगाती थी। अब कोई ज़ेवर घर में नज़र नहीं आ रहा था। फारुख ने बताया ''मुमानी ने इतनी बार झाड़ू लगाई है और बिस्तर झाड़े हैं कि घर ऐसा साफ कभी लगा ही न था।'' फारुख के व्यंग्य में हास्य का ऐसा पुट होता कि आदमी हँसे बिना रह नहीं सकता था। लेकिन फारुख को तब पता नहीं था कि वह ज़ेवर उसी की अलमारी में गंदे कपड़ों के बीच छुपा कर वफ़ा भूल चुकी थी।

***

ज़्यादातर दूसरों के सामने मैं उसे 'काली चींटी' नहीं पुकारती थी मगर कभी-कभी बेख्याली में मुँह से निकल जाता। कुछ इस नाम पर हँसी से लोट जाते कुछ जिज्ञासू आँखों से ताकते। मेरी सारी किताबों के नाम वह पढ़ने लगी थी। मेरे पास जितनी बाल साहित्य की किताबें थीं उसने चाट डाली थीं फिर वह ज़िद करती ''अम्माजान! कोई नई कहानी सुनाएँ।'' मेरी स्टडी रूम ऊपर था। कोई इंटरव्यू लेने या मिलने आता और किसी किताब या फ़ाइल की ज़रूरत होती तो वह भाग कर ऊपर से ले आती। शायद क्या, बहुत मुमकिन है कि दुनिया की सब से कम उम्र लाइब्रेरियन 'वफ़ा हबीब!' उर्फ 'काली चींटी' बन गई थी।

एक दिन इंडिया इंटरनेशनल सेंटर के कॉफ़ी शाप में वफ़ा भी हमारे साथ थीं। बच्चों को इजाज़त नहीं थी। इसलिए वह शीशे के उस पार बैठी पेस्ट्री खा रही थी और खाली स्केचों में रंग भर रही थी। जब हम चलने को हुए तो वह कलर बॉक्स और स्केच कापी अंदर ले कर आई। उसने राजस्थानी लहँगा और कुर्ती पहन रखी थी। लचका लगा पीला दुपट्टा कंधे पर से होकर दूसरी तरफ कमर के पास हल्की -सी गिरह के साथ लटक रहा था। कवि गंगा प्रसाद विमल हमारे पास पाए और वफ़ा का हँसता चेहरा और चमकीली आँखें देखकर बोल उठे -''क्या लड़की है बिल्कुल उड़ने को तैयार।''

मेरी कई दोस्तों ने कहा - ''अब वफ़ा बड़ी हो गई है उस को 'काली चींटी' कहना बंद कीजिए।'' घर में मेरे अलावा किसी को उसे 'काली चींटी' कहने की इजाज़त नहीं थी फिर भी मैं सोचने लगी अगर शादी के बाद उसके शौहर ने उसे 'काली चींटी' कह कर चिढ़ाया तो? आख़िर एक दिन मैंने उससे पूछ ही लिया ''तुम्हें बुरा लगता हो तो मैं कोशिश करूँगी कि तुम्हें वफ़ा ही पुकारूँ।'' फौरन हँस कर बोली ''नहीं, आप मुझे इसी नाम से पुकारें।'' उसकी आँखों में वही पुरानी चमक थी। उस दिन वाली खुशी जब स्कूल से लौट कर उसने बताया ''आज मैंने चींटी का चित्र देखा। उसे अंग्रेज़ी में 'एन्ट' कहते

हैं।''

समय तेज़ी से वर्षों की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। डॉ. प्रेम कुमार द्वारा लिया लगभग दो सौ पन्नों का मेरा इंटरव्यू पुस्तक के रूप में 'ज़ाने अजीबी' (किताबघर प्रकाशन) नाम से आया जिसमें उन्होंने कई पन्नों पर जगह जगह 'काली चींटी' का ज़िक्र किया था। जिसको पढ़ कर किस को क्या लगा, मगर जब मैं गुजराती लेखिका ध्रुव की पुस्तक ''कोई उम्मीद बाक़ी है' (राजकमल) के रिलीज फंक्शन के लिए अहमदाबाद गई तो मुझसे विशेष रूप से फरमाइश की गई कि आप अपने साथ वफ़ा को ज़रूर लाइएगा।''

अब गीताश्री का शदीद इसरार था कि मैं उसकी संस्मरणों की पुस्तक के लिए 'काली चींटी' पर एक छोटा-सा संस्मरण लिख डालूँ। कई बार न करने के बावजूद गीता की हठ किसी बड़ी चट्टान की तरह अड़ी रही। अब आप ज़रूर जानना चाहेंगे कि मेरे बचपन वाली काली चींटी और वफ़ा के बीच कौन सा रिश्ता है। मेरे प्रकाशक अमोद महेश्वरी ने एक दिन पूछ ही लिया ''आंटी! आप इसको काली चींटी क्यों पुकारती है? मैं हर बार सोचता था...''

मैंने हँस कर कहा ''पहले लाल और काली चीटियाँ अक्सर घरों में क़ाफिले की शक्ल में लाइन से मार्च करती नज़र आती थीं। उसी के साथ चींटे भी, जिन्होंने मुझे बचपन में कई बार काटा और दर्द से मैं रो उठती। पैरों की उंगली से छुड़ाते-छुड़ाते खून निकल ही आता था। वही हाल लाल चींटी का था। रसद ढोते-ढोते पैरों पर इस बुरी तरह काटती कि वह जगह लाल हो जाती और बड़ी देर तक जलती रहती। उन्हीं दिनों काली चींटी दिखी जो पैरों से होकर बिना काटे गुज़र गई और शक्कर का दाना उठा उसे लेकर रेंगने लगी। पहली मुलाक़ात में ही 'काली चींटी' से मेरी दोस्ती हो गई। लगा कितनी प्यारी है अपने काम से काम रखती है, किसी दूसरे को दुख नहीं देती है।''

कुछ वर्षों पहले अनिल दुबई से लौटे तो मेरे साथ रहने लगे। मैं बराबर ध्यान रखती कि अनिल के लिए खाने की चीज़ें रखी गई हैं। उनका कमरा साफ है। एक दिन अचानक मुझे लगा कि कहीं वफ़ा और उसका छोटा भाई अमन जो मेरे साथ रह रहे हैं उनके दिल में बिना किसी कारण अलगाव का अहसास तो नहीं भर रही हूँ। एक दिन दोनों को पास बुलाकर मैंने बिठाया और कहा - ''जानते हो अनिल मेरा बेटा है। उससे मेरा खून का रिश्ता है। मैं चाहूँगी तुम दोनों भी उसका ध्यान रखो! अच्छा अब यह बताओ तुमसे मेरा क्या रिश्ता है?''

''आप हमारी अम्माजान हैं।'' दोनों बोले!

''बेशक़। लेकिन हमारा न कोई खून का रिश्ता है न कोई रिश्तेदारी मगर एक रिश्ता है, वह है प्यार का। और यह रिश्ता दुनिया के हर रिश्ते से बड़ा है, इसको हमेशा याद रखना। अनिल भी वही रिश्ता तुमसे रखेंगे और हम चारों एक साथ रहेंगे।

अक्सर रात को यदि करवट बदलते या किसी तरह की धीमी आवाज़ भी होती है तो अमन पूछ लेता ''क्या हुआ अम्माजान?'' अगर मेरी तबियत ज़रा भी सुस्त लगी तो दोनों में से एक स्कूल जाएगा दूसरा घर में रूकने की ज़िद करेगा। घर बड़ा है मगर दोनों मेरा बेडरूम शेयर करते हैं। यह धमकी देना काफी होता है अगर मेरी बात नहीं सुनोगे तो अलग कमरे में रहो, बस दोनों की सिट्टी पिट्टी गुम आँखें गीली।

हमारी तीनों की टीम बाग़बानी, टीवी देखना, मिल कर कुकिंग करना जैसी ज़रूरत पड़ी नौकर के न रहने पर, अपने पसंद का खाना बनाया और घोड़े बेच कर सो गए। पिछले चार पाँच वर्षों से बिना माली हम अपना बाग़ीचा देखते हैं। जंगल वाले दरवाज़े की तरफ अगर सुअर ने बच्चे दिए हैं तो फिर 'लेडी पिग' को ऊपर से खाना देना। बकरियों को फलों के छिलके, कटी घास, छटी पेड़ की टहनियाँ डालते, बिल्ली कुत्तों के लिए मछली का सर फेंकते-चिड़ियों के लिए दाने। दो नवम्बर से पहले हमारा बरसात और गर्मी से बौराया बाग़ नए पौधों से सज जाता है। वफ़ा के हाथ से लगाया कोई पौधा सूखता। बाज़ार से खाद, बीज, नए गमले, पौधे लाने का काम अंजुम का होता। मुझे नई तरह से गमले तैयार करने पड़ते। खाद, मिट्टी में सने हाथ धो कर खाने की मेज पर बैठना टालती रहती और अंजुम कहती - ''मम्मा तीन बज गए है।'' अब अमन प्लेट में मेरा खाना ले आता और उसी तरह कौर बना-बना कर मेरे मुँह में डालता जाता जैसे मैं उसके प्रोजेक्ट बनाते गंदे हाथ रंगों और गोंद से भरे होने के कारण उसके मुँह में निवाला डालती।

अक्सर घर में काम करने वाले चकराए रहते। आपस में बातें करते ''इस घर का कुछ समझ में नहीं आता आख़िर यह बच्चे हैं किसके? बाहर से मम्मी-पापा का फ़ोन आता है। यहाँ यह इनको अम्मा और अब्बू कहते और अम्माजान?'' यह सच है कि हमारे बीच हिंदी, भोजपुरी, शिया-सुन्नी, काला-गोला, बिहार-दिल्ली का कभी कोई अड़ंगा लगा ही नहीं।

दो नवंबर की शाम दोनों केक बेक करते, घर सजाते, गुब्बारे फुला कर लटकाते और शाम ढलते-ढलते मेरे पोते काजू ऐलक-जेंडर अली शर्मा की हम सब मिल कर बर्थडे मनाते और हमारे लगाए फूलों के पौधों में से किसी न किसी गमले की कली खिल जाती।

गंगा प्रसाद विमल जी ने ठीक ही कहा था - ''उड़ने को तैयार लड़की।'' एक दिन ऐसा आएगा जब काली चींटी और दिल्लू दीमक (अमन) अपनी-अपनी दिशाओं में उड़ जाएँगे जैसे हर बच्चे शादी या नौकरी करने चले जाते है तब लगता है कि उनकी ख़ाली जगह भरने के लिए कोई न कोई प्रवासी परिंदा इस गुरूकुल में रहने आ जाएगा।

❑❑❑

डी-37/154, छत्तरपुर पहाड़ी
नई दिल्ली 110074
संपर्क : 9811119489

कविता

# कुछ कविताएँ सरहद पार से....

ज़ेबा अल्वी

## बहुत दलद होलही है

इतनी झिलमिल करती रौशनियाँ
सारे कैमरों के रुख़
उसकी तरफ़ थे
सवाल : कहाँ से उठाया था तुमको?
जवाब : मैं गुलिया खेल रही थी
सवाल : फिर क्या हुआ?
जवाब : बहुत दलद होलही है!
काम सूत्रों में हमने पढ़ा था
दुनिया का सबसे ''लज़्ज़त आगी'' है
यह ''फेल''
वह तो यह भी बता सकी न
यह ''बद फ़ेली'' है
बस!
बहुत दलद होलही है!
आज उसकी उम्र का तरयुन किया गया
''छे बरस''

पिछली बार ''तीन बरस'' वाली
बिना कुछ बताए
चिड़िया की तरह फड़फड़ाई
और उड़ गई!
इससे काफी पहिले उम्र थी
''तेरह बरस''

ऐंकर : तुम्हें मोलवी कहाँ ले गया?
जवाब : अपनी रोटी बनवाने अपने घर
फिर क्या हुआ?
मुझे पता नहीं
नशा पिला देता था मुझको
उसकी ''अपनी औरत'' भी
रहती थी उसके घर में
फिर?
फिर मोलवी बच्चों को
क़ुरआन पढ़ाने लगता था!
इस बार हमारे ''बूढ़े बदन'' में
सनसनी दौड़ गई!
ऐंकर : ''वह किताब?''
जो अज़ीम से भी अज़ीमतर है
इसे पाक होकर हाथ लगाते हैं?
''ख़ौफ़'' नहीं आया तुमको?
जवाब : बस ग़लती हो गई
(मोलवी)
ऐंकर : ''गलती'' वह भी इतनी बार?
तुम्हें पता है ''फ़ैसले'' वाले दिन का?
मोलवी : हाँ, ''पता तो है''
ऐंकर : धितकार है तुम पर लानत है!
****

## हम हैं तसलीम-व-रज़ा

बाबा,
कुत्ते वाले चाचा से तुम
रूठ-रूठ जाते थे।
धी तुम्हारी चाचा के कुत्तों से जब
डरती थी
बाबा,
कभी-कभी तुम ''बेइज़्ज़त'' भी
करते थे चाचा को
बाबा,
तुम बचपन में मुझे सुलाते थे
मेरी पीठ खुजाते थे
तुम्हारे खुरदुरे मज़दूरों वाले हाथों से
खुजवाते-खुजवाते
मुझे नींद आ जाती थी।
बाबा,
''कुत्तो''[1] मैं डर कर नींद से
चौंक-चौंक जाती थी
अगर कभी तुम्हारे नाख़ून अनजाने में
मेरी पीठ में चुभ जाते थे
तुम फिर सहलाने लगते थे
बाबा,
आज चाचा के सारे कुत्ते
मेरी पीठ भँभोड़ रहे हैं
और तुम चुप साधे
देख रहे हो
बाबा,
आज अपनी ''इज़्ज़त'' की ख़ातिर तुम
''बेइज़्ज़त नहीं करते''
चाचा को।
बाबा,
आज तुम्हारी धी की पीठ पर
पंजे गाड़ दिए हैं
चाचा के सारे कुत्तों ने
और तुम चुप साधे
देख रहे हो।
बाबा,
''रोज़े हिसाब''
हमीं से पूछा जाएगा
क्यूँ ज़िन्दा गाड़ी गई थी?
बाबा,
क्या ये भी पूछा जाएगा
अपना जीवन साथी चुनने पर
तुम क्यों ''कारी''[2] करते हो?
तुम हमें क्यों ब्याहते हो
''पाक किताब'' से?
बाबा,
अपनी ज़मीनों,
अपने जानवरों की
''अदल बदल'' में
तुम क्यों सौंप देते हो
अपनी धी को?
बाबा,
तुम्हें ''किताब'' के हुक्म से बढ़ कर
अपनी ''औताकों''[3] में दिए गए
हुकमों का ''मान'' जो है!
****

(1) सिन्धी में कुत्ते को इसी प्रकार बोलते है। (2) कारी-ऑनर किलिंग। (3) पंचायत

(सिन्ध लड़की जिसका नाम तसलीम सोलंगी था पसंद की शादी करने पर उसकी हत्या उसी के बाप और चाचा के हाथों की गई। न सिर्फ़ क़त्ल हुई बल्कि पहिले वह कुत्तों के आगे डाल दी गई फिर गोलियाँ बरसाई गईं। पाकिस्तान में यह रोज़ की कहानी है, जो कहीं ''वार्न'' कहीं ''सौरा'' आदि नामों से और क़त्ल की जाती है! कभी तेज़ाब फेंका जाता है। चार-चार-पाँच-पाँच साल की बच्चियों को अपने बापों के बराबर के मरदों से ब्याह दिया जाता है। जानवरों के बदले भी औरतों लड़कियों को भेंट चढ़ाया जाता है। उसी तसलीम सोलंगी के सवाल में हर लड़की का सवाल है। अरब का दसतूर था कि वह लड़की पैदा होते ही उसे ज़िन्दा गाड़ देते थे। क़ुरआन में एक जगह लिखा है कि-''जब ज़िन्दा गाड़ी गई लड़की से पूछा जाएगा कि किस क़ुसूर की यह सज़ा उसे दी गई थी।'' यह महा पाप था, जो हमारे प्रोफ़ेट (मुहम्मद साहब) द्वारा क़ुरआन के अनुसार इसका निषेध किया गया। ज़मीन और जायदाद जो औरत के हिस्से की क़ुरआन ने मुक़र्रर की है वह न देना पड़े इसलिए यह अपनी लड़कियों की शादी क़ुरआन के साथ करके उसे घर के एक कमरे में क़ैद कर देते है, जहाँ से वह मर कर ही निकलती। यह रसम-रवाज सिन्ध धरती का है। उनकी औताकों में यह फैसले उनके अपने बाप, भाई, चाचा आदि करते हैं। यहाँ हज़ारों ''तसलीम सौलंगी'' हैं।)

## अलगाव

वे दो बूढ़े थे
कहते हैं उन दो बूढ़ों
अपनी-अपनी खाल के अन्दर भरे हुए
नाज़ुक-नाज़ुक छोटे-छोटे
बोटी के टुकड़े कर डाले
और फिर अपने ही हाथों से
कुछ कव्वों, चीलों को लुटाए
आसमान पे मँडराते गिद्धों की
एक दावत कर डाली
बोटी के कुछ टुकड़े
ऐसे टूट के तड़पे
जैसे अचानक छत पे चिपकी
छिपकली की दुम कट जाए
और तड़पे इस ''अलगाव'' से
लेकिन तड़प-तड़प कर एक दिन
वह बोटी ख़ामोश हुई
और एक टूटा टुकड़ा अब तक
रेंग रहा हैं दीवारों पर
ज़िन्दा है पर
मौत से बदतर!

****

## दिलीप कुमार से ....

यूसुफ़ भाई,
बहुत क़िस्से हैं आपकी
''किस्सा ख़्वानी बाज़ार''[1] के

यूसुफ़ बेटे,
काँपते हाथों से हम तुमको लिखते हैं
तुमने कहा था तुम यहाँ से
''गए कब हो?''
अच्छा हुआ तुम चले गए
जिस्म तुम्हारा चला गया

यूसुफ़ बेटे,
तुमको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते
आँखें अब पथरा सी गई हैं
यूसुफ़ ने तो अपने बाप को
कुरता अपना भेजा था
और तुम्हारी ख़ुशबू हम तक
नहीं पहुँचती[2]

यूसुफ़ दोस्त,
तुम्हें याद है?
अपने क़िस्सा ख़्वानी वाले घर के
जिस ''बिल्लोखे'' में
छिपा के तुम पैसे रखते थे
छिपम-छिपय्या खेलते थे तुम
जिन गलियों, जिन बाज़ारों में

यूसुफ़ दोस्त,
उन गलियों उन बाज़ारों में
''छुपम छुपय्या'' खेल रहे हैं
दहशतगर्द।

यूसुफ़ भाई,
''नूरजहाँ'' को हमने रोते देखा है,
''मीना बाज़ार'' से तुम्हारी बहनें गहने लेने आई थीं
और दो बहनें अपने बाप के
चालीसवें का सामान
सुर्ख़ मोतियों की मालाएँ
सुर्ख़ शोलों में पिघल गईं
इनसानी आज़ा टुकड़ों में
बिखर गए
कोई नहीं रही पहचान

यूसुफ़ भाई,
एक भाई ने
अपने दिए हुए कंगन से
अपनी बहन का बाज़ू पहचाना
अपने-अपने लख़्त-ए-जिगर के
''लख़्त'' ''लख़्त'' को
लोग ले गए दफ़नाने

यूसुफ़ भाई,
अच्छा हुआ तुम चले गए
जिस्म तुम्हारा चला गया

यूसुफ़ भाई,
और बहुत किस्से हैं
आपकी ''क़िस्सा ख़्वानी'' के

***

1 क़िस्सा ख़्वानी पेशावर शहर का बाज़ार है और रेज़िडेन्शियल इलाक़ा भी। दिलीप कुमार का घर वहाँ आज भी क़ायम है। दिलीप कुमार ने बरसों पहले एक इन्टरव्यू में यह पूछे जाने पर कि आपको पेशावर याद आता होगा? कहा था- ''मैं वहाँ से आया ही कब हूँ?''

2 यह एक अंतर कथा है। हमारे एक प्रोफ़ेट जिन्हें हम हज़रत यूसुफ़ कहते है (बाइबिल में जो जोज़ेफ़ के नाम से जाने जाते हैं) उनके सौतेले भाइयों ने उन्हें बारह साल की उम्र में एक, अन्धे कुएँ में फेंक दिया था। सब भाई उनसे इस कारण नफ़रत करते थे कि बाप उन्हें बहुत चाहते थे। उनके ग़म में रो-रो कर वह अन्धे हो गए थे। जब वह मिस्र में थे तो उन्होंने अपना कुरता अपने बाप की आँखों पर डालने को उन्हीं भाइयों के हाथ भेजा था। बाप ने कहा-इससे मुझे यूसुफ़ की ख़ुशबू आ रही है। फिर यह चमत्कार था कि उनकी आँखों की रौशनी लौट आई।

❑❑❑

बी-105, अफ़नान आर्केड, ब्लॉक-15, गुलिस्ताने जौहर, कराँची, पाकिस्तान - 75290

कहानी

# दिलों की एक आवाज़ ऊपर उठती हुई ...

मुकेश वर्मा

तीन सौ सड़सठवीं मंज़िल से गिरते हुए जब वह अपने होश-हवास पर कुछ क़ाबू कर पाया तो उसने देखा कि वह नीचे गिरता जा रहा है। वह मदद के लिए उस बड़ी इमारत के सामने चिल्लाया लेकिन ऊपर के कई माले हमेशा की तरह सख़्त बन्द हैं। मकानों की दरारों में से रह-रहकर सिगरेट का धुआँ और शराब की गन्ध लापरवाही से निकल रही है।

अपने जिस्म को पत्थर की तरह ठीक सीधे और नीचे ही नीचे जाते देखते हुए उसके दिमाग़ में सिर्फ़ मदद... मदद की एक ही आवाज़ गूँज रही है। उसे तीन सौ पाँचवी मंज़िल के टैरेस पर एक हैरतज़दा आदमी दिखाई पड़ा। उसने हाथ फैलाकर कहा- 'मैं नीचे गिरता जा जा रहा हूँ, बताओ मैं क्या करूँ... मेरी मदद करो।' टैरेस पर सकपकाया खड़ा आदमी अकबका गया और लगभग हकलाते हुए चिल्लाया- 'अरे रुको... क्या करते हो... मर जाओगे... मैं फिर कहता हूँ कि... वहीं रुक जाओ...'

गिरता हुआ वह झल्लाना नहीं भूला, 'मालूम है... मुझसे बेहतर कौन जान सकता है... स्साले...'

लेकिन तब तक वह दो सौ अठासी नं. फ़्लैट के क़रीब पहुँच गया है। उसने फिर मदद की गुहार की।

दरवाज़े पर एक चुस्त-दुरुस्त बदगुमान शख़्स पतलून के जेबों में हाथ घुसेड़े उसे ताक रहा है। उसने तेज़ आवाज़ में पूछा 'क्या है रे, काय को चिल्लाता है? क्या नाम है तेरा? काय को कूँ-दा? भीख माँगने का नवा तरीका निकाला है? दो लात देउँगा तो और फटाफट नीचे पहुँचेगा...'

उसने चाहा कि रुककर वह इस बदतमीज़ आदमी से निपट ले लेकिन उसे अपनी हालत का ध्यान आया। उसने खुद ही कुछ करने में दिमाग़ लगाया।

जब वह फ़्लैट नं. दो सौ उनसठ के पास से निकला तो उसने बिना देखे कहा, 'भाई, मैं नीचे गिरता जा रहा हूँ... हालाँकि ज़मीन पर हरा लॉन है लेकिन फिर भी चोट तो लगेगी... अब मुझे ज़रा जल्दी से बताओ कि... गिरते वक़्त मेरा सही पोश्चर क्या रहे... कि पैरों को सीधा रखूँ... या सिर को हाथों से थामें रहूँ... ताकि चोट ख़तरनाक न बन सके...'

फ़्लैट की खिड़की से आसमान को घूरता एक मनहूस और बेरोज़गार नौजवान उसे देख बहुत दिनों बाद आश्चर्यचकित हुआ और हँसने लगा।

फिर यकायक चौंक कर बोला, 'भाई साब, आप कहाँ नौकरी करते थे... जगह बताओगे...? टेम्परेरी या कि परमानेंट... मुझे ज़्यादा फ़र्क़ नहीं पड़ेगा...'

दुनिया से एक बार फिर दु:खी होकर, अब उसने कभी कहीं पढ़े गए योग के बारे में सोचा, यदि वह श्वास को रोक लेने का अभ्यास करे या फेफड़ों में से हवा निकाल ले तो... क्या शरीर हलका होकर फूल की तरह आहिस्ते से ज़मीन पर रख जाएगा... क्या ऐसा हो सकता है?... ऐसा न हो कि फूल जैसा हलका होकर वह इमारत के किसी ख़तरनाक कोने से ही टकरा कर छार-छार हो जाए... हाथ-पाँव टूटे तो भी चल जाएगा लेकिन... कहीं जान से हाथ धोना पड़ा तो... यह 'तो' इतना बड़ा बन कर उसके सामने आया कि इस बार वह फूट-फूट कर रोने लगा।

कुछ बच्चे, बचपन और जवानी की सरहद पर खड़े, फ़्लैट नं. दो सौ छब्बीस के तंग बरामदे में कौन सा खेल खेलें, इस बात को लेकर झगड़ रहे हैं। एक भर आवाज़ चीखा...

'... सुपरमैन ...सुपरमैन...'

'...इसकी लाल चड्डी कहाँ है...?'

'...हवा में...कहाँ गया...?'

'...नीचे...भई नीचे...।' कोरस में आनन्द के स्वर गूँज उठे।

'...सुपरमैन...सुपरमैन...'

इस क्षण वह फ़्लैट नं. दो सौ तीन के सामने से गिरता हुआ गिरता गया। दीवार पर लटके काँच में सूरत निहारता एक अधेड़ शेविंग कर रहा है। देखकर उसने दाढ़ी पर चिपका साबुन पोंछा और ज़ोर से हँसा और ज़ोर-ज़ोर से हाथ हिलाने लगा। गिरते आदमी ने फिर वही पूछना चाहा लेकिन वह हाथ ही हिलाता रहा।

यकायक उसने पूछा, 'कैसे गिरे... अचानक... खुली खिड़की से?...' और ज़ोर से खिड़की बन्द कर ली।

वह अभी भी हवा में है। बेचैन है। उसके शरीर का क्या पोश्चर होना चाहिए, वह समझ नहीं पा रहा है। उसने बड़ी आजिज़ी से उस फ़्लैट को देखा जिसके बाथरूम की बाहर वाली खिड़की चौपट खुली है।

'...बेशर्म...गुण्डे...बदमाश...'

टॉवल की ओर लपकती औरत मुँह खोल कर चीखी। खिड़की से नीचे देखती औरत का मुँह खुला का खुला रह गया।

उसके भाग्य का गुण्डा बदमाश फ़्लैट नं. एक सौ अठहत्तर के पास फड़फड़ा रहा है।

सामने ड्राइंग-रूम में तीन लोग बैठे और एक खड़ा व्हिस्की पी

रहा है।

एक चिल्लाया- 'देख, क्या सीन है...!'

सबकी आँखें उसी तरफ़ मुड़ गयीं।

'...क्या कहता है... आओ सट्टा लगाएँ... आसमान से उतरा फरिश्ता या अन्तरिक्ष से आया चोर... लगाते हैं... फरिश्ते पर एक के चार... चोर पर एक के आठ... माल निकाल... जल्दी बे...'

फ़्लैट नं. एक सौ उनचास के किचन में आटा गूँथती काली औरत ने कहा- '... एक वो है जो ऊपर से कूद पड़ा और... एक तुम हो निठल्ले... निकम्मे... काम के न काज के... दुश्मन अनाज के... मैं नौकरी न करूँ तो भूखे मर जाओ... उसे देखो... और कुछ शर्म करो...' उसने दरवाज़े से नीचे गिरते आदमी को एक बार देखा और चुप बैठा रहा। जब गिरते आदमी ने उसे देखा, तब भी वह उसी तरह चुप बैठा रहा। औरत के अधिक बड़बड़ाने पर वह चुप उठा। चप्पलें पैरों में फँसाकर बाहर निकल आया और आदतन सीढ़ियाँ उतरने लगा। नीचे उतरते हुए ऐसा लगा कि वह नीचे गिर रहा है। उसने जेब ढूँढ़ी लेकिन आख़िरी बीड़ी वहाँ भी नहीं है।

उस वक़्त फ़्लैट नं. एक सौ अठारह के बाजू से वह गुज़र रहा है, जिसके टैरेस में दर्जनों कैक्टस के गमलों के बीच से पीले पत्तों वाली एक बेल दीवार दर के कोने से बार-बार बाहर उमड़ रही है। अस्त-व्यस्त मोटी औरत ने लगभग कान खींचते हुए लड़के को बुरी तरह से डपटा।

'... छोड़...छोड़...उसने देखा... दरवाज़ा भी ठीक से बन्द नहीं करता... हाय रे...वह नीचे गिरा जा रहा है...उसने देख लिया...ज़रूर देखा होगा...'

लड़के के ढीठता से कहा, 'किसने देखा...?'

पसरी औरत बेदम हाँफ रही है।

'...उसने...और किसने... अरे वो मुआ... जो नीचे गिरा जा रहा है...'

लड़के ने हाथों में ताक़त भरी और गिचगिचा कर बोला, 'कौन गिरा... आप तो मुझे देखो कि आपके लिए मैं कितना नीचे गिर सकता हूँ...'

कहते हुए मनीबैग से फूली और तीन जगह से उधड़ी चितकबरी पैंट पाँव से परे ठेल दी।

फ़्लैट नं. चौरानवे के बूढ़े ने उसे बहुत पहले से देख लिया। फ़र्क़ केवल इतना रहा कि वे उसे चिड़िया समझ कर खुशी-खुशी सोच रहे थे कि आकाश में अभी भी चिड़ियाँ हैं। लेकिन उनकी बत्तीसी निपक कर बाहर आने को हुई जब उन्हें कुछ-कुछ आभासित हो सका कि इतनी बड़ी तो चिड़िया नहीं हो सकती। ऐनक लगाकर वे सप्रमाण जान पाए कि कमबख़्त यह तो आदमी है, बेकार ही नीचे को भागा जा रहा है। रैलिंग से सटी कुर्सी पर फिट लेटते हुए वे बुदबुदाए, 'आह! जवानी की मौज भी क्या होती है... ज़मीन-आसमान सब एक हो जाता है... कहीं भी चले जाओ... ऊपर-नीचे, दाएँ-बाँए, चारों दिशाएँ... सभी सनसनाती... तब कुछ भी ग़ज़ब करने का मन होता था... अब न उम्र रही और... न कोई गज़ब हुआ... अब तो देखने से भी डर लगता है...।' उन्होंने टटोल कर गोली खाई और आसमान से मुँह फेरकर करवट बदल ली।

जिस दम वह फ़्लैट नं. बहत्तर के नज़दीक पहुँच रहा है। उसके भीतर के हॉल में पहले से कुछ परेशान हाल लोग आपस में उलझ रहे हैं। उन्हें कुछ सूझ नहीं रहा है। तभी जिसने उसे देखा, उसके साथ कई और लोग समवेत भी चिल्लाए।

'...वह...वह...देखो...देखा...कैसे... हाँ...गज़ब...एकदम...फाइन यार...'

उनमें से सिर खुजलाता आदमी जिसने सबसे बाद में देखा, मुँह फाड़ कर आया और सबसे आगे हो गया।

'...अरे...हाँ...'

उसकी 'हाँ' इतनी बड़ी और लम्बी हुई कि उसमें सबकी हाँ घुस गई और दूर तक और देर तक फैली रही। '...आइडिया... हाँ... आइडिया... ऐइटाइ तो आमी खूँजछिलाम... आर ऐइटाइ पालामछिलम ना... आखिर आसमान से टोपका... छोप्पर फोड़ के...'

सब लोग उसके चारों ओर इकट्ठे हो गए।

'...दादा...की भालो...?...?...? ...?'

'अपुन को एकटो नोइ आइडिया आयी... अपुन को बीमा के बारे में एड फिलिम कोरबो...तो...सुनो...आमार कम्पनी की महिला... जार लाइफ का बीमा कराया, ओ आदमी... 300वीं मंजिल से नैचूँ को पूँ-दा... बूझले तो न...आमार कम्पनी सच ए फॉस्ट... के...श्शाला, जब वो 200वीं मंजिल पे पौंचा तो कम्पनी ने क्लेम का चैक हाथ में पोकरा दिया...व्ही ऑर फास्ट, व्ही ऑर अहैड द शाला टाइम... है न,...आइडिया...एकदम नोइ...'

यह दुनिया का नियम है कि जो नीचे गिरता है, वह गिरता ही जाता है। प्रकृति भी इसमें आड़े नहीं आती बल्कि अपनी सारी गुरुत्वाकर्षण शक्ति के साथ जुट जाती है।

वह फ़्लैट नं. अट्ठाईस के सामने रुकना चाहता है। लेकिन बावजूद हरचंद कोशिशों के रुकना हो नहीं पा रहा है। उस फ़्लैट की तीसरी खिड़की से भी निकला एक कोमल कमज़ोर हाथ उसे रोकना चाह रहा है लेकिन रोक पाना नहीं हो पा रहा है।

यूँ तो बड़ा कहा जाता है कि प्यार में बड़ी ताक़त होती है आज यह कहनात प्यार बेकार सिद्ध हुई कि गिरने से प्यार रोक सकता है अलबत्ता कारण ज़रूर बन सकता है। बात सिर्फ़ इतनी भर नहीं बल्कि आगे यह भी जताया जाता है कि दुनिया की कोई ताक़त किसी को गिरने से रोक नहीं सकती। लेकिन केवल लेखक ही है जो यह कमाल दिखा सकता है, भले ही काग़ज़ के मैदान में और कलम के माथे पर भल-भल स्याही बहाता हुआ...

...और ऐसा हुआ भी। लेकिन कुछ फ़र्क़ के साथ। हुआ यह कि फ़्लैट नं. तेईस से नीचे आते-आते वह सीधे हरे लॉन पर नहीं गिरा। पास के पेड़ पर आया। फिर उसकी डालियों से, टहनियों से, पत्तों में से सरसराता पके आम सा टपका। धम्म की इक आवाज़, वह भी हलकी सी। धूल झाड़ी। उठ कर चल दिया, इस बार भी बिना बताए कि अब कहाँ जा रहा है। आप कहेंगे कि ऐसे कैसे???? लेकिन आप भी तो दिल ही दिल में चाहते यही थे... तो अब क्यों कैसे-कैसे की रट लगा रखी थी?

अगर दिल की बात पूरी हो जाए तो भला आपको क्या और क्योंकर आपत्ति होनी चाहिए...!!!!

❑❑❑

एफ़-1, सुरेंद्र गार्डन, बाग़ सेवनिया पुलिस स्टेशन के पास, होशंगाबाद रोड, भोपाल मप्र, 462043
मोबाइल 9424446584

# संवेदनहीन विकल्पहीनता उर्फ 'फ़्यूजन-समय' का सच

राकेश बिहारी

(रवि बुले की कहानी 'लापता नत्थू उर्फ दुनिया ना माने)

भूमंडलोत्तर कहानी की आलोचना जिन बातों के लिए सामान्यतया की जाती है, राजनैतिक कहानियों का अभाव उनमें से एक है। जनवादी कहानी के दौर से तुलना करें तो संख्या की दृष्टि से शुद्ध राजनैतिक कहानियाँ इधर ज़रूर कम लिखी जा रही हैं, लेकिन यह भी सच है कि राजनैतिक निहितार्थों को प्रकटित करने वाली कहानियों का एक बड़ा और उल्लेखनीय हिस्सा आज अस्मिता संघर्ष की कहानियों के नाम से जाना जाता है। सच पूछिए तो अतीत में हाशिये पर जीने को विवश कर दिये गए व्यक्ति-समूहों के अस्तित्व और पहचान के अथक संघर्ष को रेखांकित करनेवाली ये कहानियाँ, विशुद्ध राजनैतिक कहानियाँ ही हैं। लेकिन समकालीन आलोचना सामान्यतया इन्हें राजनैतिक कहानियों से अलग कर शुद्ध रूप से अस्मिता विमर्श की कहानियों के रूप में ही रेखांकित करती है। अस्मिता विमर्श बनाम राजनीति का यह सामाजिक-राजनैतिक प्रश्न एक अलग बहस की माँग करता है। पर इतना तो तय है कि कुछ तो इस कारण और कुछ समकालीन राजनीति के चाल-चरित्र और इससे उत्पन्न जटिलताओं को ठीक-ठीक समझे बिना किन्हीं ख़ास राजनैतिक या दलगत पक्षधरता के संधान की मंशा से संचालित होने के कारण भी भूमंडलोत्तर कहानी के प्रति आलोचना की यह अवधारणा बनी है।

पिछले पच्चीस वर्षों की राजनैतिक स्थितियों पर गौर करें तो राजनीति से पक्षधरता का विलुप्त होना एक आम बात हो गई है। यहाँ पक्षधरता को किसी चालू मुहावरे में सीमित कर किसी ख़ास काट की दलीय प्रतिबद्धता का पर्याय न मानते हुये सत्ता और व्यवस्था के मूल्यगत आचार-व्यवहार से जोड़ कर देखे जाने की ज़रूरत है। ऐसी पक्षधरता की लगभग अनुपस्थिति के समानान्तर अवसरवादिता, विकल्पहीनता, स्वार्थपरक ध्रुवीकरण जैसे कसैले सत्य ही आज राजनीति के अनिवार्य अवयव हो गए हैं। मूल्यों का क्षरण, निजी स्वार्थों की प्रमुखता और इन सब के बीच विकल्पहीनता की स्थिति से दो-चार होता एक आम आदमी अपनी बुनियादी ज़रूरतों की पूर्ति के लोभ-लालच में जिस तरह विपरीत गुणधर्मी वैचारिकताओं के दो पाटों में पिस रहा है, वह दारुण ही नहीं भयावह भी है। कथादेश (जून 2001) में प्रकाशित और रवि बुले के पहले कथा-संग्रह 'आईने सपने और वसंतसेना' में संकलित कहानी 'लापता नत्थू उर्फ दुनिया ना माने' समकालीन राजनीति के इस विद्रूप चेहरे के सूक्ष्म पड़ताल का जतन तो करती ही है, अपनी सम्पूर्ण रचनात्मक उपस्थिति से भूमंडलोत्तर कहानी में राजनैतिक समझ और दृष्टि के अभाव की बहुश्रुत शिकायत का प्रतिपक्ष भी रचती है।

स्वतन्त्रता आंदोलन से लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के शुरुआती दो-ढाई दशकों तक राजनीति मूल्य आधारित थी या यूँ कहें कि स्वयं ही मूल्य जैसी थी। धीरे-धीरे राजनीति का वह धवल चेहरा न सिर्फ मलिन हुआ बल्कि राजनीति शुद्ध रूप से एक व्यवसाय के रूप में अपनी जगह सुनिश्चित करने में कामयाब हो गई। एक ऐसा व्यवसाय, जिसके मूल में मिलावट की कारगुज़ारियाँ एक हैरतअंगेज़ ठसक के साथ हर क़दम मौजूद होती हैं। परिस्थितियाँ आज इतनी भयावह हो चुकी हैं कि 'मिलावट' अपना नाम बदल कर पहले हमें आकर्षित करता है और फिर धीरे-धीरे अपनी चकाचौंध की गिरफ़्त में लेते हुये हमें अपना अभ्यस्त बना लेता है। पारंपरिक व्यापार के व्यवहार का वह लज्जास्पद स्वरूप जिसे कभी 'मिलावट' कह के हिकारत की दृष्टि से देखा जाता था, आज 'फ़्यूजन' का नया नाम धारण कर जीवन के हर क्षेत्र में गर्व से इठला रहा है। 'लापता नत्थू उर्फ दुनिया न माने' के मुख्य पात्र 'नाथू राम गाँधी' के चरित्र और उसकी नियति के माध्यम से मिलावट और 'फ़्यूजन' की इसी विडम्बना का एक मानीखेज पाठ हमारे सामने खुलता है।

नाथू राम गाँधी के नाम में छुपी विडम्बना इसी 'फ़्यूजन-समय' के बड़े सच को रेखांकित करती है। एक बार इस दुनिया पर गौर करने की ज़रूरत है, मिलावट के इस उत्तर आधुनिक प्रतिरूप के कई-कई उदाहरण हमारे सामने जीवंत हो उठेंगे- नाथू राम और गाँधी का फ़्यूजन, वाम और दक्षिण का फ़्यूजन, जनसंघ और कांग्रेस का फ़्यूजन, फासीवाद और समाजवाद का फ़्यूजन, धर्म और राजनीति का फ़्यूजन, कांग्रेसियों और भाजपाईयों का फ़्यूजन, गाँधी और हेडगेवार का फ़्यूजन,... इस तरह मिलावट यानी फ़्यूजन की एक अंतहीन फेहरिस्त हमारे सामने तेज़ और दीर्घ श्वाँस लेने लगती है। दरअसल फ़्यूजन का यह नवाचार मूल्यच्युत समकालीन राजनैतिक अवसरवादिता का एक मानीखेज़ प्रतीक है, जहाँ विचार और विचारधारा सुविधा और अवसर के पैरहन होते हैं, जिन्हें जब चाहा उतार दिया और जब चाहा पहन लिया। उल्लेखनीय है कि इस कहानी में युवक कांग्रेस के दफ्तर में गाँधी और हेडगेवार की तस्वीरें अगल-बगल लगी रहती हैं, जिनमें से हेडगेवार की तस्वीर चुनाव के दौरान इसलिए उतार ली जाती है कि बाहर से कब कौन

बड़ा कांग्रेसी नेता आ जाए।

कहने की ज़रूरत नहीं कि इस तरह की राजनैतिक अवसरवादिताएँ अंततः किसी ज़रूरतमन्द का जीवन ही तबाह करती हैं। गाँधी के राम राज्य की परिकल्पना के समानान्तर नब्बे के दशक में राम मंदिर निर्माण और बाबरी मस्जिद का ताला खुलवाने के बहाने क्षुद्र राजनैतिक मंशाओं के जन मानस में घुसपैठ की पैंतरेबाज़ियों को बारीकी से विश्लेषित करती यह कहानी प्रतीकों की राजनीति के स्याह-सफेद को भी रेखांकित कर जाती है। प्रतीकों की यह राजनीति पढ़े-लिखे लेकिन बेरोज़गार और ज़रूरतमन्द लोगों की मजबूरी का दोहन कैसे करती है उसे भी इस कहानी में आसानी से देखा जा सकता है। एक अदद नौकरी की ज़रूरत नाथूराम गाँधी को एक ऐसे दुष्चक्र में फँसा कर रख देती है जहाँ उसे अपने विवेक और अपनी पहचान को खुद से दूर कर स्वयं को दो अलग-अलग विरोधाभासी वैचारिक परिस्थितियों में ढालने को तैयार करना पड़ता है। एक तरफ वह 'मी नाथूराम गोडसे बोलतोय' के जवाब में एक ऐसा सनसनीख़ेज़ नाटक लिखने को विवश हो जाता है, जिसे देख कर लोग नाथूराम का नाटक भूल जाएँ तो वहीं दूसरी तरफ वह 'मी नाथूराम गोडसे बोलतोय' में नाथूराम का किरदार निभाने को भी तैयार हो जाता है। दिलचस्प लेकिन विडंबनात्मक है कि सदाशिव राव जो एक कांग्रेसी है, और समर्थभाऊ जो एक भाजपाई है दोनों नाथू राम गाँधी को बिल्कुल एक-से प्रलोभन देते हैं-

''और इस बार चुनाव जीता कि मण्डल ऑफिस में तेरी नौकरी पक्की। नगर विकास कमेटी में भी तुझे लूँगा,'' सदाशिव मुस्कुराए, ''तू मेरा इतना काम कर दे बस!''

''और तुम चाहे इस घड़ी हमारी सहायता करो न करो, मैं स्टांप पर लिख के दे देता हूँ कि अगले सत्र में तुम्हारी नौकरी पक्की। मेरे असिस्टेंट का पद पिछले दो वर्षों से खाली है। कोई समझदार लड़का नहीं मिल रहा था।'' समर्थभाऊ ने विश्वास दिलाने वाले लहजे में कहा।

स्पष्ट है कि सामने वाले की ज़रूरत को

**संदर्भ :**
**रवि बुले की कहानी**
**'लापता नत्थू उर्फ दुनिया ना माने'**

भाँप कर चारा फेंकने की यह चालबाज़ी सदाशिव राव और समर्थभाऊ के तथाकथित वैचारिक अंतरों को पाट कर उन्हें एक ही धरातल पर ला खड़ा करती है, जहाँ राज्य और राजनीति से लोक कल्याण के तत्व कैसे बाहर कर दिए जाते हैं पता ही नहीं चलता और देखते-ही-देखते राजनीति शिकार का खेल बन कर रह जाती है।

गाँधी पर लिखे जाने वाले नाटक की परिकल्पना करते हुये नत्थू उर्फ नाथूराम गाँधी रचनात्मकता की एक नई दुनिया में चला जाता है। वह गाँधी बनाम नेहरू की बहस के बहाने विभाजन की त्रासदी को बिलकुल ही नए तरीके से देखना चाहता है. उसे शिद्दत से इस बात की ज़रूरत महसूस होती है कि गाँधी और नेहरू दोनों का पुनर्मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

इसके लिए वह गाँधी को सत्याग्रह और अहिंसा के खाँचे से बाहर निकाल के देखना चाहता है तो नेहरू को समाजवादी लोकतंत्र और पंचशील के सिद्धांतों से। लेकिन रचनात्मकता सनसनीखज़ कैसे हो सकती है! सदाशिव राव तो गाँधी के बहाने कुछ ऐसा सनसनीखेज़ चाहता है जिसे देखकर लोग गोडसे के नाटक को भूल जाएँ। ऊहापोह के इसी बिंदु पर नत्थू निर्णय लेता है - ''काफी ऊहापोह के बाद मैंने तय किया कि मैं लिखूँगा। सदाशिव राव के लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि नौकरी पाई जा सके... और वैसा लिखूँगा, जैसा सदाशिव राव कहते हैं।''

नौकरी की उम्मीद में नाथूराम गाँधी उर्फ नत्थू अपने नाटक में गाँधी जी को महादेव शंकर के अवतार की तरह प्रस्तुत करता है। एक ऐतिहासिक चरित्र के साथ किसी मिथकीय पात्र का यह फ़्यूज़न कहानी का वह बिंदु है जहाँ विज्ञापन की भाषा और 'टार्गेट कस्टमर ग्रुप' की ज़रूरत के बीच एक अदद नौकरी की संभावित गारंटी की प्रत्याशा किसी रचनाकार को इतिहास से भी छेड़छाड़ करने के साहस से भर देती है। धार्मिक और भावनात्मक ध्रुवीकरण के रास्ते सत्ता पर काबिज़ होने का सपना देखने वाली पार्टी की रणनीति के जवाब में धार्मिक चरित्रों के इस्तेमाल की इस नई प्रविधि से उत्साहित सदाशिव राव नत्थू के हाथ चूमते हुये कहता है- 'काश, तुम लड़की होते' लेकिन प्रशंसा के उस कोमलतम क्षण में भी नत्थू को अपनी नौकरी की ही याद आती है - ''मेरी नौकरी तो पक्की हुई न राव साहब?'' सदाशिव राव के उत्साह और नत्थू की इस कातरता के बीच वर्तमान राजनीति का वह स्वरूप दिख जाता है जहाँ नेता का अर्थ बहेलिया होता है और एक आम मतदाता अपना स्वाभाविक अधिकार जताने की बजाय एक लोभी चिड़िया की स्थिति जीने को विवश हो जाता है।

सत्ता में गज़ब का सम्मोहन होता है। लोभ और लोलुपता के संभावित भविष्य का गणित थोड़े ही दिनों में नत्थू को भी राजनीति की धूर्त शब्दावली से परिचित करा देता है। तभी तो सदाशिव राव के प्रस्ताव पर नाटक लिखने का निर्णय लेते हये ऊहापोह से गुजरने वाला नत्थू, समर्थभाऊ और सदानंद के गोडसे का अभिनय करने का प्रस्ताव सुनने के बाद राजनीति की पाठशाला के एक गंभीर प्रशिक्षु की तरह कह उठता है - ''मुझे नौकरी की परवाह नहीं। मैं आपके साथ काम करूँगा। जो इंसान दूसरों के काम न आ सके उसका जीना ही बेकार है।'' संकोच और शुरूआती ऊहापोह को लाँघते हुये राजनीति के अखाड़े की तरफ नत्थू के उठे ये कदम राजनीति को लेकर 'काजल की कोठरी' के मुहावरे को ही चरितार्थ करते हैं। लेकिन वह है तो एक आम आदमी ही न! और फिर उसका उद्देश्य भी सत्ता नहीं नौकरी की प्राप्ति है। सदाशिव राव का एक

छोटा-सा संदेश कि 'तुम भी घर के भेदी निकले, विभीषण! जिधर मुँह काला किया है उधर ही रहना, अब मुझे अपनी सूरत न दिखाना' उसे बेतरह परेशान कर जाता है. घात के आरोप का यह तीर निशाने पर बैठता है। नतीज़ा... वह नाटक वाले दिन ही अचानक ग़ायब हो जाता है। नत्थू का यूँ गुम हो जाना क्या है आख़िर? उसका पलायन? या एक दोगली व्यवस्था का मौन प्रतिरोध जिसका हिस्सा बनते-बनते वह रह गया या कि बचते-बचते भी वह उसी का शिकार हो गया? स्थिति बहुत पेंचीदा है। लेखक इस जटिलता को बखूबी समझता है। किसी सीधे-सरल अंत पर पहुँच कर परिस्थिति की इस जटिलता को ठीक से अभिव्यंजित नहीं किया जा सकता। इसलिए वह नत्थू की गुमशुदगी के कारणों की संभावनाओं को खुला छोड़ देता है। जिसका जो मन हो वही अर्थ ग्रहण करे। लेकिन आगे चल कर जंगल में किसी पेड़ से लटकती उसकी लाश को बच्चों द्वारा देखना, उसके पीछे से खून का रिसाव और डायरी में एक जगह नत्थू का अपनी प्रेमिका से बचपन में अपने यौन शोषण की बात कहना... यथार्थ के चेहरे की यह जादूई उपस्थिती पहले से व्याप्त जटिलता में कुछ और पेंच डाल कर उसे और सघन और परतदार बना देती है। आखिर यहाँ तक पहुँच कर कहानी क्या इशारा करना चाहती है? अलग-अलग राजनैतिक दलों के द्वारा नत्थू का इस्तेमाल किए जाने के उपरांत उसके पीछे से खून निकलने की प्रतीक रचना के समानान्तर नत्थू के बचपन की उन तिक्त स्मृतियों को खड़ा कर आखिर लेखक कौन सा रूपक खड़ा करना चाहता है? कहीं वह यह तो नहीं कहना चाह रहा कि अपनी-अपनी स्वार्थ सिद्धि के बहाने अलग-अलग राजनैतिक दल एक आम आदमी का अप्राकृतिक यौन शोषण कर रहे हैं? यह एक बहुत ही वीभत्स मेटाफर है? यहाँ प्रश्न यह भी उठता है कि क्या इस तरह के मेटाफर से बचे बिना यह कहानी पूरी नहीं हो सकती थी? नत्थू की नियति के समानान्तर कहानी का यह प्रतीक-विधान भी मुझे समान रूप से परेशान करता है।

उल्लेखनीय है कि लगभग पूरी कहानी डायरी के प्रचलित शिल्प में लिखी गई है। डायरी नत्थू की ही है जिसमें यह पूरा घटनाक्रम दर्ज है। लेकिन उसके लापता होने के बाद का कोई भी ज़िक्र वहाँ मौजूद नहीं है। नत्थू द्वारा सपने में किए गए आग्रह के आधार पर उसकी कहानी लिखते हुए लेखक के मन में कई सवाल पैदा होते हैं- ''मसलन, नत्थू ने नाटक के मंच से ग़ायब होने के बाद के एक क्षण का भी कोई ज़िक्र क्यों नहीं किया? क्या वह खुद ग़ायब हो गया था? तो क्या वह डायरी लिखते पकड़ा गया था? क्या उसी का परिणाम था वह दृश्य जो बच्चों ने देखा था? लेकिन उस दृश्य सहित नत्थू कहाँ लापता हो गया? यदि नत्थू अपनी डायरी को और आगे लिखता, तो क्या लिखता? क्या नत्थू के डायरी लिखने से किसी को नुकसान था? क्या नत्थू की डायरी को कुछ लोग खोज रहे हैं?'' लेखक दरअसल ये प्रश्न नत्थू से नहीं अपने समय से पूछ रहा है। और फिर ये सवाल लोकतन्त्र में आम आदमी की ताक़तों की तरफ भी तो इशारा करते हैं, जिनका बोध आज के समय की सबसे बड़ी ज़रूरत है। नाथूराम और गाँधी में बँटे नत्थू का सच क्या इस समय का रूपक नहीं है, जहाँ बीच के रास्ते पर चलना किसी तलवार की धार पर चलने जैसा होता है? दुधारी तलवार पर चलने की इस विकल्पहीन विवशता को रेखांकित करती इस कहानी को समकालीन राजनीति की गंभीर समीक्षा के रूप में भी पढ़ा जाना चाहिए।

❑❑❑

राकेश बिहारी
एन.एच.-3/सी-76, एन. टी. पी. सी.,
विंध्याचल, पोस्ट -विंध्या नगर, जिला
सिंगरोली, मप्र 486885
मोबाइल 9425823033
ईमेल brakesh1110@gmail.com

****

रवि बुले
बी-301, अष्ट विनायक बिल्डिंग, प्लॉट
नं. 23, नागौरी डेरी के पास, म्हाडा,
मालवनी, मलाड वेस्ट
मुम्बई 400095

****

## ''ढींगरा फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान'' हेतु पुस्तकें आमंत्रित

**''ढींगरा फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान''**

हेतु चयन प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है। इस प्रक्रिया में वर्ष 2015 तथा 2016 में प्रकाशित हिन्दी उपन्यासों तथा हिन्दी कहानी संग्रहों पर विचार किया जाएगा। सम्मान समारोह अगले वर्ष 2017 में अमेरिका में आयोजित किया जाएगा। इस हेतु पुस्तकें आमंत्रित हैं।

पुस्तक पर लिखें

**''ढींगरा फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय सम्मान हेतु''**

लेखक, प्रकाशक, पाठक कोई भी इस सम्मान हेतु अनुशंसाएँ पुस्तक की दो प्रतियों के साथ भेज सकते हैं।

15 फरवरी 2017 तक प्राप्त पुस्तकें चयन प्रक्रिया में शामिल की जाएँगीं। सम्मान हेतु पुस्तक की दो प्रतियाँ इस पते पर भेजें-

**पंकज सुबीर ( समन्वयक-भारत )**
**पी. सी. लैब**
**शॉप नं. 3-4-5-6**
**सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट**
**बस स्टैंड के सामने**
**सीहोर 466001, मध्य प्रदेश**
**दूरभाष 07562-405545**
**मोबाइल 09977855399**
**ईमेल : subeerin@gmail.com**

फिल्म समीक्षा के बहाने

# दंगल – लैंगिक भेदभाव पर एक और बेहतरीन फिल्म

वीरेन्द्र जैन

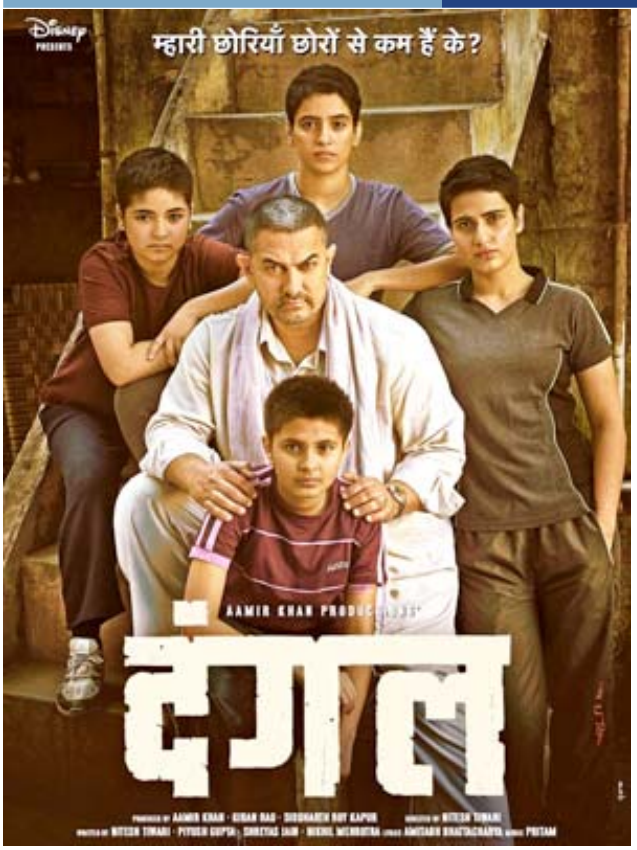


पिछले दो दशकों से साहित्य में महिला विमर्श को केन्द्र में लाया गया था; जिसके प्रभाव में पिछले दिनों लैंगिक भेदभाव को चुनौती देने वाली कई फ़िल्में बनी हैं; जिनमें से कुछ बैंडिट क्वीन, गुलाबी गैंग, नो वन किल्लिड जेसिका, क्वीन, पिंक, बोल, ख़ुदा के लिए, आदि तो बहुत अच्छी हैं। आमिर खान की दंगल भी बिना कोई ऐसा दावा किए उनमें से एक है। इसमें यह भी जोड़ा जा सकता है कि जब कोई विषय किसी परिपक्व कलाकार के हाथ लगता है तो उसका निर्माण उसके सौन्दर्य और प्रभाव को कई गुना बढ़ा देता है। पिछले दिनों खेल और उसकी समस्याओं को लेकर भी कुछ कथा फ़िल्में व बायोपिक जैसे चक दे इंडिया, भाग मिल्खा भाग, मैरी काम, पान सिंह तोमर आदि बनी हैं और सफल हुईं हैं, पर यह फ़िल्म दोनों का मेल है। यह फ़िल्म हरियाणा जैसे राज्य में जहाँ पुरुषवादी मानसिकता इस तरह सवार है कि कन्या भ्रूण के गर्भपात के कारण लैंगिक अनुपात ख़राब हो गया है, की सच्ची घटना से जन्मी है और एक प्रेरक फ़िल्म है। जो लोग देश के आमजन को, स्वार्थी, गैरसंवेदनशील, अनपढ़, और कूपमंडूक मान कर चलते हैं, इस फ़िल्म की व्यवसायिक सफलता उन लोगों को भी आईना दिखाती है। उल्लेखनीय है कि प्रफुल्लित स्कूटर, कार-स्टेंड वाले ने बताया कि नोटबन्दी के बाद आने वाली यह पहली फ़िल्म है जो लगातार तीन दिन से हाउसफुल चल रही है और उसका घाटा पूरा कर रही है।

व्यावसायिक स्तर पर सफल यह आम व्यावसायिक फ़िल्मों से इसलिए अलग है कि इसमें स्टार के नाम पर केवल आमिर ख़ान हैं, और चार नई लड़कियाँ, फातिमा साना शेख़, ज़ाइरा वसीम, सान्या मल्होत्रा, और सुहानी भटनागर हैं। इसमें न तो प्रेम कहानी है और न ही आइटम साँग जैसे भड़कीले बदन दिखाऊ दृश्य हैं। इसमें न तो फूहड़ कॉमेडी है और न धाँय-धायँ करती व्यवस्था को नकारती हिंसक घटनाएँ हैं। यह किसी पाक शास्त्र में कुशल ऐसे रसोइए की कला है जो बिना मसाले के भी स्वादिष्ट और पोषक रसोई बनाना जानता है। इस फिल्म में अगर खून बहता हुआ नज़र आता है तो वह आँखों से बहता हुआ नज़र आता है, बकौल ग़ालिब – जो आँख से ही न टपका तो फिर लहू क्या है। पूरी फ़िल्म में पात्रों की आँखें भरी हुई नज़र आती हैं, कभी खुशी से तो कभी परिस्तिथिजन्य दुखों से। यही स्थिति दर्शकों की आँखों को भी बार-बार भर देती है, पर न पात्रों की भरी आँखें छलकती हैं, न ही दर्शकों की। दिल का भर आना इसी को कहते हैं। छोटी सी कहानी में भी कितनी बातें समेटी जा सकती हैं; यह बात राजकपूर की कला के सही उत्तराधिकारी आमिर खान से ही सीखी जा सकती है। एक खिलाड़ी जो देश के लिए खेलने की क्षमता और भावना रखता था; उसे खेल छोड़ कर केवल इसलिए नौकरी करना पड़ती है क्योंकि उसके पिता का मानना है कि ज़िन्दा रहने के लिए रोटी ज़रूरी होती है, मैडलों को थाली में डाल कर नहीं खाया जा सकता। वह अपना सपना अगली पीढ़ी के माध्यम से पूरा करना चाहता है; किंतु उसके घर कोई लड़का पैदा नहीं होता; जिसकी प्रतीक्षा में वह चार लड़कियाँ पैदा कर लेता है। मैडलों के न मिलने पर दुखी होते देश में मैडल जीतने वाले देशों की तरह खिलाड़ियों की देखभाल की उचित व्यवस्था नहीं है। खेल अधिकारी उसे बताता है कि खेल के लिए कुल कितना बजट आवंटित है और उसमें से भी कुश्ती के लिए इतना भी नहीं बचता कि जिससे गद्दे तो दूर एक मिठाई का डिब्बा भी न आ सके। लड़कियों की कुश्ती की तैयारी कराने के लिए भी दूसरी लड़कियाँ नहीं मिलतीं जिस कारण लड़की को अपने दूर के रिश्ते के भाई के साथ ही कुश्ती करके सीखना पड़ता है और पहली

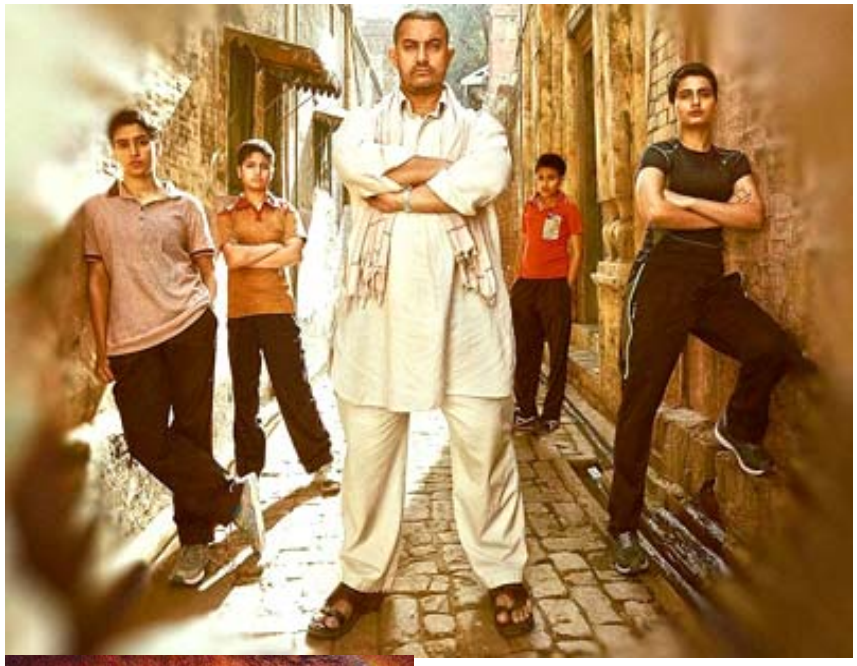

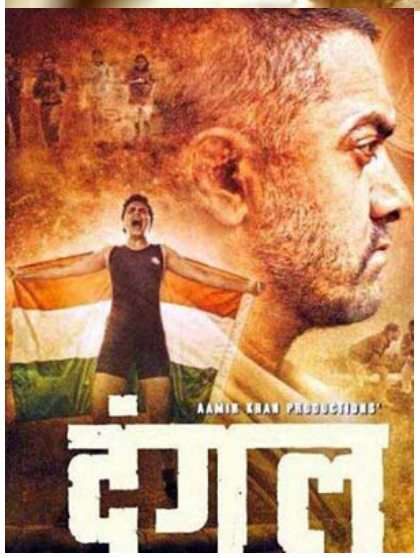


जीत किसी लड़के को पराजित करके ही जीतना पड़ती है। पुरुषवादी समाज में जब पिता कोच का काम करता है तो परम्परागत अनुभवों से सिखाता है और जिस कारण से उसका स्पोर्ट कॉलेज के कोच से टकराव भी होता है; जो आधुनिक किताबी ज्ञान से सिखा रहा होता है। अंतत: दोनों के समन्वय से खिलाड़ी लड़की द्वारा अपने विवेक से लिया गया फैसला ही जीत दिलाता है।

खेल के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए किसी लड़की का टकराव उसके मन में भर दिए गए एक कमज़ोर ज़ेन्डर होने की भावना से ही नहीं होता अपितु सहपाठियों और सामाजिक तानों-बानों से भी होता है, पहनावा व हेयर स्टाइल बदलने के कारण भिन्न दिखने से भी होता है। उनके लिए तय कर दी गई कलाओं तक सीमित रहने की परम्परा से भी होता है। सामाजिक विरोध के साथ-साथ जाति समाज के विरोध का सामना कोई पहलवान ही कर सकता है। किसी महिला के खिलाड़ी बनने के लिए उसे अपने परम्परागत सौन्दर्य बोध को मारना होता है। मैत्रीय पुष्पा अपने आत्मकथात्मक उपन्यास 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में लिखती हैं कि उनकी माँ सरकारी नौकरी में एक साधारण सी कर्मचारी थीं जिन्हें गाँव-गाँव की यात्रा करना पड़ती थी। इस नौकरी में सम्भवत: अपनी सुरक्षा के लिए वे रूखे-सूखे रहने को अपना कवच मानती थीं, और केवल छुट्टियों में ही अपने बालों में तेल लगवाती थीं। इस फिल्म में खिलाड़ी लड़की द्वारा टीवी देखने, अपने बाल बढ़ाए जाने और नेल पॉलिश लगाए जाने को भी उसका लक्ष्य विचलित होना माना जाना भी एक मार्मिक प्रसंग बन गया है। हाउस फुल हाल में फिल्म प्रारम्भ होने के पहले राष्ट्रगीत बजाए जाते समय तक दर्शक अपनी सीट ही तलाश रहे होते हैं और अनचाहे भी वे राष्ट्रगीत के लिए तय मानकों का उल्लंघन कर रहे होते हैं, दूसरी ओर जब फिल्म की कहानी में राष्ट्रगीत बज रहा होता है, वे तब भी खड़े हो जाते हैं।

❐❐❐

2/1 शालीमार स्टर्लिंग, रायसेन रोड
अप्सरा टाकीज के पास भोपाल (म.प्र.)
462023 मोबाइल 09425674629

**फार्म IV**
**समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण ( देखें नियम 8 )।**

**शिवना साहित्यिकी**

1. प्रकाशन का स्थान : सीहोर, मध्य प्रदेश
2. प्रकाशन का अंतराल : त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़। क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ। (यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं। पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ। (यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं। पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर। क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ। (यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ। (यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

**हस्ताक्षर**

**पंकज कुमार पुरोहित**
**प्रकाशक**

शख़्सियत

# होता है शबो रोज़ तमाशा मिरे आगे ( 1 )

सुशील सिद्धार्थ

मुझे लगता है डबडबाई आँखों, रुंधे कंठों, लपलप करते मेरुदंडों, कोहनी तक जुड़े हाथों, प्रकंपित टाँगों और प्रचुर विस्मित प्रमुदित मुद्राओं के सहारे ज्ञान चतुर्वेदी को नहीं समझा जा सकता। ख़ुद ज्ञान भी इस परिपाटी और षोड्शोपचार पद्धति को पसंद नहीं करते। पसंद क्या, हँसी उड़ाते हैं। ....तब मैं उनके परिचय के इलाक़े में नया-नया आया था। ज़ाहिर है उनको मन से पढ़ा था। बहुत आदर से भरा था।...आज तो आदर और बढ़ गया है।

तभी उन दिनों फोन पर बात करते हुए मैं उनकी वाजिब तारीफ़ कर रहा था। ज्ञान जी कुछ देर सुनते रहे। फिर अपनी ख़ास शैली में हँसते हुए बोले 'सुशील जी,इतनी प्रशंसा मुझसे बर्दाश्त नहीं होगी। मेरी सहनशक्ति सीमित है।' अपनी तारीफ़ को दरकिनार करने की आदत या श्रीलाल शुक्ल में थी, या ज्ञान चतुर्वेदी में है। कुछ औरों में भी होगी। पूरे कुएँ में भाँग कभी नहीं पड़ती।

इसलिए, कुछ व्यक्तियों व कुछ रचनाओं को छोड़ दें तो व्यंग्य का परिवेश बेहद मनोरंजक है। यह परिवेश विडंबनाओं, विसंगतियों, धुप्पलों, लंतरानियों, वक्रताओं आदि से भरा हुआ है। यानी जिन तत्त्वों के सहारे व्यंग्य लिखा जाता है, वे सशरीर लेखकों में मौजूद हैं। यह उथलेपन के मानवीकरण का अजब दौर है। दौर को समझाने के लिए कुछेक उदाहरण दे रहा हूँ।

पहला उदाहरण। कवि-व्यंग्यकार निर्मल गुप्त हैरत से बता रहे थे कि भाईसाब, यह कहाँ की शब्दावली है। निर्मल ने कहा, 'एक आत्मघोषित व्यंग्य आलोचक एक आत्मग्रस्त व्यंग्य लेखक से कह रहे थे कि यार, यह उपन्यास तो फ़्लॉप हो गया। इसके बाद आलोचक ने बाईं आँख दबाई और लेखक ने दाईं। आश्चर्य यह कि दोनों अपने-अपने मुँह से हँसे। भाईसाब आप बताओ,यह हिट और फ़्लॉप किसी किताब को समझने बताने की शब्दावली है! साहित्य में क्या ऐसे मूल्यांकन होता है?' निर्मल को इन आलोचक वग़ैरह महोदय ने एक अवसर पर अपने बारे में बताया था कि व्यंग्य का एक माफ़िया मैं भी हूँ।

*

दूसरा उदाहरण। एक विगतयौवन युवा को पुरस्कार घोषित हुआ। घोषित कराने वाले ने एक वास्तविक युवा से कहा,'इस सूचना से उस अमुक खेमे के लोग तो जलभुन गए होंगे। क्या करूँ। देना पड़ा। आजकल वह युवा डिप्रेशन में जी रहा है।' वास्तविक युवा व्यंग्यकार को मैंने रवींद्र कालिया की एक झुँझलाहट सुनाई। भारतीय ज्ञानपीठ में ऐसी ही किसी सूचना पर झुँझला कर कालिया जी ने मुझसे कहा था, 'यार किसी की मदद करने के दूसरे तरीके भी हैं। लेकिन अगर यह नज़रिया है तो फिर यह लेखक और पुरस्कार दोनों का अपमान है। कल को पुरस्कार यह कह कर दिए जाने लगेंगे कि अमुक को हाइड्रोसील है। या अमुक को मासिक धर्म अनियमित होता है।'

*

तीसरा उदाहरण। शिल्प काल्पनिक, बात सौ टका सही।

'सुरेश कांत : सुशील, वे अपने लिए रास्ते चौड़े करते हैं। ठीक है। करें। मगर हमारे लिए रास्ते बंद करने में क्यों लगे रहते हैं। इस काम में उनको बड़ी मेहनत पड़ती होगी।

सुशील : जी,अपने लिए तो हर आदमी काम करता है। वे परोपकारी हैं। हमारे लिए भी पसीना बहाते हैं। कहा है ना...नदी न संचै नीर। वे अपने भीतर की घृणा का संचय नहीं करते। हमको आपको बाँट देते हैं। परकारज के कारने साधुन धरा सरीर।

सुरेश कांत : साधु साधु!!'

*

चौथा उदाहरण। शैली वही बात सही--

'सुशील : सुरेश जी, आजकल वे लेखक जी बहुत व्यस्त हैं।

सुरेशकांत : कोई लंबी रचना रच रहे हैं क्या!

सुशील: कुछ रच तो रहे हैं। और इसी में व्यस्त हैं। जनवरी में चार शहरों में जाकर आठ पुरस्कार लेने हैं।

सुरेशकांत : फरवरी?

सुशील : तीन शहरों में जाकर सात जगह अध्यक्ष, मुख्य अतिथि, समागत, सान्निध्य, विशेष वक्ता का किरदार अदा करना है।

सुरेशकांत : मार्च?

सुशील: मार्च में दो शहरों में जाकर बाईस लोकार्पण करने हैं।

सुरेशकांत : अप्रैल !

सुशील : अपने घर पर रहकर चौंतीस लोकार्पण करने हैं।

सुरेशकांत : आगे ?

सुशील : मई में शिष्यों की रचनाएँ ठीक करनी हैं। जून में शिष्यों को ठीक करना है। जुलाई-अगस्त में अपने ऊपर शोध प्रबंध लिखना है। सितंबर-अक्टूबर में नए जूते खरीदने हैं। नवंबर-दिसंबर में पुराने जूते चलाने हैं।

सुरेशकांत : यार, तो वे लिखेंगे कब!

सुशील : भाईसाब, लेखक होने के लिए या कहे जाने के लिए

लिखना ज़रूरी होता है क्या?'

*

पाँचवाँ उदाहरण। शिल्प वही, बात सही--

'अ : सर,मैं तो बरसों से लिख रहा हूँ। फिर भी आप कह रहे हैं कि मुझे पढ़ने की तमीज़ नहीं है!

आ : कह सकता हूँ...

अ : कैसे...

आ : मेरे कहने का आधार यह है कि...

अ : कि...

आ : कि अगर तुमको सही ढंग से पढ़ना आता तो...

अ : तो?

आ : तो तुम बरसों पहले लिखना बंद कर चुके होते!!'

*

छठा उदाहरण। सब वही--

'सुशील: सर,एक सवाल पूछ रहा हूँ।

सर : सवाल ही क्यों पूछ रहे हो? गोष्ठी में जाने का उपाय पूछो। परिधि से केंद्र में कैसे आया जाए इसका षड्यंत्र पूछो। ऐसे पूछो कि व्यंग्यबहादुर पूछना भूल जाएँ।

सुशील: ये व्यंग्यबहादुर क्या हैं!

सर : एक मशहूर प्रजाति। ये लोग लिखने के अलावा सारी बहादुरी दिखाते हैं। खैर, सवाल पूछिए।

सुशील: व्यंग्य में आज कितनी तरह के लोग सक्रिय हैं?

सर : दो तरह के।

सुशील: पहले

सर : पहले वे जो भाषा समाज और व्यंग्य लेखन से मुहब्बत करते हैं।

सुशील: दूसरे

सर : दूसरे वे जो इस मुहब्बत का कारोबार करते हैं।

सुशील: क्या इस कारोबार को धन्धा कह सकते हैं।

सर : सोनागाछी केवल वहाँ नहीं है जहाँ है। साहित्य की सोनागाछियाँ देख कर इस कारोबार को धन्धा कह सकते हो।

सुशील: तो क्या दोनों तरह के लोगों के लिए व्यंग्य के सौंदर्यशास्त्र का एक ही मतलब है?

सर : मतलब अलग है। इसीलिए इस

पर चर्चा करने वाले तीन तरह के लेखक होते हैं। पहले वे जिनके व्यंग्य में सौंदर्य है।

सुशील: दूसरे

सर : दूसरे वे जिनके व्यंग्य में शास्त्र होता है।

सुशील: तीसरे

सर : तीसरे वे जिनके व्यंग्य में न सौंदर्य होता है न शास्त्र।

सुशील: फिर क्या होता है?

सर : ज्ञानरंजन की प्रसिद्ध कहानी का शीर्षक याद करिए।

सुशील: घंटा

सर : बस वही होता है। घंटा। घंटाकोटि में भी चार तरह के लेखक हैं। एक, जो अपना घंटा बजाते हैं। दो, जो दूसरों का बजाते हैं। तीन, जो किसी का घंटा लटकाए घूमते हैं।

सुशील: और चार

सर : जो एकदम घंटा बन जाते हैं।'

*

सातवाँ उदाहरण। सब वही--

'अ : सर,उनके व्यंग्य में विडंबना है, विसंगति है, करुणा है। लेकिन....

आ : लेकिन क्या!

अ : बस व्यंग्य नहीं है।

आ : तो?

अ : तो आप स्पष्ट करें कि क्या इन सबके होने पर भी व्यंग्य नहीं हो सकता है। यह मुद्दा है।

आ : पहले एक मुद्दा साफ कर दूँ। वे खुद एक मुद्दा हैं।

अ : सर वे मुद्रा हैं।

आ : सच है। वे मुद्रा हैं। लेखन में फोटो खिंचवाते हैं। व्यंग्य में पोज़ बनाए रहते हैं। इसके अलावा मुद्रा बटोरने पर लगे रहते हैं।

अ: आगे बढ़िए।

आ : वे खुद व्यंग्य की बड़ी विडंबना हैं। यह विसंगति है कि बरसों से लिख रहे हैं। उनका क्या होगा यह सोचकर करुणा जाग रही है।

अ : तो व्यंग्य में और क्या होना चाहिए।

आ : उनको पढ़ कर मेरा अनुभव कह रहा है कि पचास ग्राम गूढ़ता और सौ ग्राम मूढ़ता भी होनी चाहिए।'

-----केवल इतने उदाहरणों से समझा जा सकता है कि समकालीन व्यंग्य किन स्थितियों मन:स्थितियों में नप/ पनप रहा है।

....और इसीके बीच 'व्यंग्य के प्रेमचंद' ज्ञान चतुर्वेदी ने अपने लेखन का लोकतंत्र विकसित किया है।

इसलिए, जब एक बार प्रिय कथाकार पंकज सुबीर से अतिप्रिय व्यंग्य लेखक ज्ञान चतुर्वेदी के विषय में बात हो रही थी कि कुछ संस्मरण जैसा लिखने का मन कर रहा है। संस्मरण के बहाने उस समय पर निगाह डालने का मन कर रहा, जिसमें ज्ञान जी बरसों से लिख रहे हैं।...पंकज ख़ुद व्यंग्य लिखते हैं और इसके समूचे परिदृश्य पर उनकी नज़र रहती है। मेरी बात सुनकर पंकज ने अपनी शायराना तबीयत के साथ मीर को उद्धृत किया --'देख तो दिल कि जाँ से उठता है, ये धुआँ-सा कहाँ से उठता है।'

मैं चकित कि पंकज, इस प्रसंग में मीर के इस शेर का क्या मतलब है। पंकज ने अपनी नटखट शैली में कहा कि सुशील भैया, मीर ने केवल दो जगहों से धुआँ उठने की बात कही है। दिल और जान। आप जिस तरह लिखना चाह रहे हैं उससे कुछ लोगों के कहाँ-कहाँ से धुआँ निकलेगा, इसका अनुमान लगाना आसान नहीं है। हर जगह से निकलने वाले धुएँ का रंग अलग होगा। रंग से जगह का अन्वेषण करना पड़ेगा। और भविष्य में इसीको छिद्रान्वेषण कहा जाएगा। (अगले अंक में जारी)

❑❑❑

किताबघर प्रकाशन, 4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002,
मोबाइल 9868076182

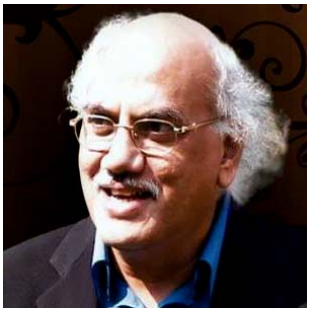

# सत्कथा कही नहीं जाती, क्यों?

संतोष चौबे

सत्कथा कही नहीं जाती वरिष्ठ कथाकार मुकेश वर्मा का तीसरा कथा-संग्रह है और जैसी कि अपेक्षा की जा सकती थी, अपनी कहन और शैली में अनूठा भी।

संग्रह का नाम ही अपने आप में कई सवाल खड़े करता है, वे प्रश्न भी हैं और जिज्ञासाएँ भी। क्या आज की सत्कथा इतनी अग्रहणीय और वीभत्स है कि उसको कहना प्रचलन में नहीं? क्या सत्कथा इतनी विचित्र और कुहासे से ढकी हुई है कि एक लेखक उसे समझने और कहने में खुद को अक्षम पाता है? क्या सत्कथा की गति इतनी तेज़ है कि वह लेखक की निगाहों में नहीं समाती और इसलिए उसे पकड़ना और कह पाना भी कठिन है? क्या सत्कथा इतनी हास्यास्पद है कि लेखक को उसे कहते-कहते पेट पकड़ कर बैठ जाना पड़ता है? क्या वह इतनी दारुण और करुणामय है कि उसे कहा नहीं जा सकता और 'कहानी कही न जाय' वाली स्थिति है?

असल में उपरोक्त सभी परिस्थितियों को मिलाकर मुकेश वर्मा की कहानियों का चरित्र बनता है। कहीं वे दारुण और करुणामय हैं तो कहीं गतिशील और तेज़ी से घटित होती हुई, कहीं हास्यास्पद हैं तो कहीं विचित्र किंतु सत्य, पर अंत में वे एक गहरा आवेग या पैथॉज़ पैदा करती हैं और मानवीय गुणों के पक्ष में खड़े होते हुए आपको अपना बना लेती हैं। कथा एक ऐसी सत्कथा बन जाती है जो पाठक के हृदय में चलती तो रहती है पर उपरोक्त सभी प्रश्न भी, रूप बदल-बदल कर, उसके मन में उठाती रहती है।

आइए उनकी कुछ कहानियाँ लेते हुए अपनी इस अवधारणा को स्पष्ट करते हैं।

'बिलैडी फूल' इस संग्रह की अंतिम कहानी है और अपनी रचनात्मकता में भी सर्वोत्तम है। मुकेश वर्मा की भाषाई कसावट और वर्णन की कला यहाँ पूरी तरह खिलकर सामने आती है। कहानी के तीन प्रमुख पात्र बड़े साहब, बड़े बाबू और दुर्जन सिंह अपनी-अपनी वर्गीय चेतना को बहुत खूबसूरती के साथ प्रगट करते हैं। जहाँ बड़े साहब सिगरेट का धुँआ उड़ाते एक खुर्राट, जानलेवा और मातहतों के प्रति निर्मम इंसान हैं; वहीं बड़े बाबू उनके बोझ से पिसते, मुक्ति के आकांक्षी लेकिन उसके लिए प्रयास करने में अक्षम व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं जिनका परिवार भी उन्हीं की तरह के दब्बूपन से ग्रसित हो उनके साथ-साथ पिसता जाता है। 'बिलैडी फूल' के साहब का चित्र देखिए,

'यह जो नया साहब आया है, भगवान कसम ग़ज़ब की चीज़ है। अरे बहुत देखे, साहब लोग ज़्यादा नहीं तो थोड़े बहुत आदमी तो हुआ करते थे। लेकिन यह तो किसी राक्षस की औलाद। एकदम नकचढ़ा और निष्ठुर। उसे किसी की कोई फिक्र नहीं। मातहतों से ऐसे बरतता है जैसे सब उसके बंधुआ मज़दूर और उसके दिए टुकड़ों पर पल रहे हों। अपार घृणा है उसके मन में। साफ कहता भी है कि इन सालों की जात ही ऐसी है। पहले दर्जे के कामचोर, हरामख़ोर, मक्कार। जब तक लात नहीं लगाओ, हरकत में नहीं आते। इनके लिए कोई रियायत, मुरव्वत की ज़रूरत नहीं। बस चले तो हाथ में जूता लेकर बैठूँ... हर बार कहते हुए नई सिगरेट जला लेता है। घंटे भर में चार सिगरेट पी जाता है। एक सिगरेट दस बारह रुपये से कम क्या होगी? यानी उसके दिनभर धुँआ उड़ाने का जो खर्च है उसमें तो मेरे बड़के की एक पतलून आ जाए, जिसे खरीदने के लिए तीन साल से लाले पड़े हैं। लेकिन साहब को इन बातों से क्या मतलब। कठिन कलेजे का आदमी है। भीतर ठंडक नहीं, छाती में आग जो लगा रखी है। तो धुँआ भी हाथ भर का निकलेगा सो मुँह और नाक से तोप के गोलों की तरह भकाभक छूटता रहता है जिसे सब मन मसोसे देखते और कोसते हैं। केवल दुर्जन सिंह ऐसे दत्तचित्त होकर देखता है जैसे मंदिर में अगर बत्ती सुलग रही है...'

इसके बरक्स बड़े बाबू भरी ठंड में कँपकँपाते हुए अपना परिचय इस प्रकार देते हैं,

'ठीक उस वक्त मैं जर्जर कोट में से बमुश्किल हाथ निकाल पाता। मिचमिचाई आँखों के नीचे चश्मे के बोझ तले दबी नाक से निकलता सुर्र सुर्र पानी उल्टी हथेलियों से पोंछता रहता और नया कोट खरीदने की योजनाओं के कई प्रारूप बनाता और ख़ारिज करता रहता। हर बार एक नया लाल कोट, चौकड़ी धारी वाला, जैसा भाटिया साब कभी कभी पहनते थे, आँखों में टँगा मिलता जिसमें से मेरे हाथ निकले होते... हर बार पैसे की कमी रोड़ा बनकर अड़ जाती। उस राह में दुर्जन सिंह भी कम रोड़ा नहीं था। ऐसे हर कठिन अवसर पर कठोर मौसम के बंधनों और बंदिशों से आज़ाद और बेपरवाह उसका छरहरा बदन आँखों के सामने कूदने लगता। मन कहता, 'देखो एक यह है, ऐसा कोई हट्टा कट्टा पहलवान भी नहीं है, दुबला-पतला ही समझो। लेकिन पट्ठा ठंड को धता बताता है। और एक तुम हो, लाड़ के लल्ला। सारी ज़िंदगी छींकते

पादते निकली। ज़रा सी ठंड पड़ी नहीं कि नाक से परनाले छूटने लगते। गर्मी आई कि पसीने की बदबू से मरे जानवर की तरह गंधाते हो कि भला आदमी पास बैठने से गुरेज़ करे। बचपन में खूब गोल मटोल था मैं। अम्मा सरसों के तेल से कितनी मालिश करती थीं। बरसों पहले वे नहीं रहीं। इसीलिए ये हालत हुई।'

दुर्जन सिंह बड़े साहब का आवश्यक सम्मान तो करता है पर उनसे आतंकित नहीं है। बड़े बाबू से वह सहानुभूति रखता है पर उसे बहुत खुले रूप में प्रदर्शित नहीं करता। पत्नी के मर जाने के बाद वह अपने बच्चों की देखरेख खुद ही कर रहा है और अंत में उन्हें इंजीनियर एवं डॉक्टर बनाकर ही दम लेता है। वह अपनी ताक़त भारतीय समाज में उपस्थित पारंपरिक दार्शनिकता से पाता है,

'...बड़े बाबू, सच्चा कुछ नहीं। ये जो दिखाई पड़ रहा है ना, दुख-सुख, किरोध, बैर, लोभ, मोह सब...कुछ नहीं सिरिफ माया है। उसी का धुँआ-धुँआ है चारों ओर देखो तो दिखता नहीं लेकिन ऐसा नहीं बड़े बाबू गौर से देखो, ध्यान लगाकर देखो तो उस पार जोत है, जहाँ हम सबका घर है, आख़िरी घर। सो कलयुग में प्राणी का क्या काम...यही कि मन को इस धुंध में हाँकते चलो। धरम की एक लेन बना लो और बस चलते जाना है, लेकिन दरअसल जाना कहीं नहीं है। काल को ही छाती पर से गुज़र जाना है। काल के पहिए भी धुँआ-धुँआ हैं। शरीर भी धुआँ ही तो है। अंत में क्या निकलता है.... धुँएँ को धुँएँ में मिलना है। सो सीधी राह करम की पकड़ लो भाई, सद्गुरू का यह कहना है...'

दुर्जन सिंह को इस दर्शन ने जीवन से लड़ने, उससे गुज़र जाने की ताक़त दी है। वह दूध बेचता है, नौकरी करता है, बच्चे पालता है, मौसम की मार सहता है, मगर हारता नहीं। वह आत्माभिमानी है और जब साहब 'बिलैडी फूल' कह कर उसका अपमान करते हैं तो वह नौकरी से इस्तीफा दे देता है। वह अपना दूध का धंधा पूरी तरह अपना लेता है और अपने छोटे बेटे को साथ ले फिर पैरों पर खड़ा हो जाता है।

बड़े बाबू अपनी दयनीयता में ऐसा कुछ नहीं कर पाते। कहानी का अंतिम दृश्य बहुत सुंदर है जिसमें दुर्जन सिंह से अचानक मिलने के बाद बड़े बाबू के मन में अपने नारकीय जीवन से मुक्ति की आकांक्षा जागती है और वे दिन भर एक पार्क में गुज़ार कर शाम को ठंडी हवा में साईकिल पर तेज़-तेज़ पैडल मारते हुए अपना सब दुख भूल जाते हैं, खुद को आज़ाद महसूस करते हैं।

कहानी निम्न मध्य वर्ग की वह त्रासदी बयान करती है जिसके चलते वह निम्न वर्ग से अपने आप को एक नहीं कर पाता और उच्च वर्ग में प्रवेश नहीं कर पाता। गहरी करुणा से भरी और जीवन संघर्ष को अनेक स्तरों पर रेखांकित करती यह कथा एक अबूझे से अंत के साथ समाप्त होती है जिसमें मुक्ति की आकांक्षा छिपी हुई है।

संग्रह की दूसरी उल्लेखनीय कहानी असल में उसकी पहली कहानी 'दिलों की एक आवाज़ ऊपर उठती हुई' है। वह फैंटेसी और यथार्थ का अद्भुत मिश्रण है। कहा जाता है कि लेखक को तब तक फैंटेसी नहीं लिखना चाहिए जब तक यथार्थ पर अच्छी पकड़ न हो क्योंकि फैंटेसी में यही यथार्थ अपने सभी गुणांकों के साथ मौजूद रहता है और या तो अर्थ को और प्रकाशित या और अंधकारमय बनाता है। इस कथा में बाज़ार, सेक्स, जीवन का नैराश्य, दूसरों के दुख से निर्लिप्तता तथा आज के समय के कई क़िस्से एक फ़िल्म की तरह आँखों से गुज़रते हैं जिन्हें तीन सौ मंज़िल से गिरता एक आदमी अलग-अलग घरों की खिड़कियों से देखता और पाठक को दिखाता है। मुकेश वर्मा में पाठक के मन को पढ़ने की अद्भुत क्षमता है और वह जान लेते हैं कि पाठक के मन में इस गिरते हुए आदमी के प्रति संवेदना जाग चुकी है और वे उसे पेड़ की शाखाओं में उलझाकर मरने नहीं देते। क्राफ्ट एक फैंटेसी की तरह सामने आता है। कथावस्तु इतनी विचित्र और तीव्र गति से घटित हो रही घटनाओं से भरी हुई है कि उसे कहने के लिए लेखक को फैंटेसी का सहारा लेना पड़ता है। यहाँ गिरना भी आज के समय का एक रूपक है।

'सत्कथा कही नहीं जाती' संग्रह की शीर्षक कथा है। इसके मर्म को कहानी का अंतिम वाक्य स्पष्ट करता है। 'और हाँ, सद्गुरू यह भी कहते हैं कि सत्कथा कही नहीं जाती, सुनी नहीं जाती, सिर्फ गुनी जाती है, और हाँ... लिखी तो जाती ही नहीं।' अपनी इस प्रगट विडंबना के बावजूद यह कथा लिखी गई है। आंतरिक और बाह्य के संघर्षों, रूपों और प्रतिरूपों के बीच झूलती यह कथा इतनी जटिल है कि उसे हास्यास्पद बनाए बिना कोई चारा नहीं। यहाँ कवियों पर कुछ कटाक्ष किए गए हैं मगर निश्चित ही वे कविता के बारे में नहीं हैं। इन्हें कथा के संदर्भ में एक कमज़ोर लेखक के उदाहरण के रूप में ही लेना चाहिए। शिक्षा जगत् में चल रहे खेल, व्यक्तिगत महात्त्वाकांक्षाओं को लेखकीय आवरण में प्रस्तुत करने की चतुराई तथा उनके बीच उभरती कथा अजब विद्रूपताओं में फँसती चली जाती है और हास्यास्पदता से शुरू हुई कहानी गहरी करुणा में समाप्त होती है।

संग्रह की एक और प्रभावशाली कहानी 'वे लोग : ये लोग' है। पिता और बेटे के बीच खड़ी मँझली पीढ़ी का दुख और कुहासा इस कहानी में उभर कर आता है और पाठक के मन में फैलता जाता है। कहानी के 'पिता' का चित्र देखिए :

'लंबा लपकता कद, ताँबा मिला गोरा रंग, खिचड़ी मूँछें, कुछ-कुछ नीचे गिरती सी, और ऊँचा-ऊँचा फैलता ढेर सारा अपनापन- और यहीं से वे हमें बेहद अपने लगते। ऐसे हमारे पिता। जहाँ तक मैं उस उमर में देख पाया, वे बड़ी फजर उठने और कोई भी रात हो, कैसी भी हो, पाँच बजने के पहले ही घड़ी लेकर बाहर निकल जाते। चलने में दिक़्क़त नहीं थी और शहर भर के कुत्ते, बिल्ली, गाय, भैंस तमाम जानवरों से पक्की बोलचाल थी। आदमियों का तो ख़ैर सवाल नहीं तो फिर छड़ी क्यों रखते, कभी बूझ नहीं पाया। घूमने का कोई ठिकाना नहीं था। मन की मर्ज़ी, दिल के राजा, ऐसा वे खुद कहते। और फिर रानीपुरा के छोटे तालाब के उस पार, कभी भूतेश्वर की तरफ, कभी कैंटोनमेंट वाले बड़े पुल पर से रेलगाड़ियों को देखते तो कभी कजरी वन खेल मैदान में नियमित दौड़ने वाले लड़कों के साथ दौड़ने लगते।

वृंदावन घाट से लगा हुआ कनफटे जोगियों का जो अखाड़ा है, वहाँ उनका मन ज़्यादा रमता। भुरभुरी भसकती मिट्टी को देखकर रहा नहीं जाता। बस निहाल हो जाते। खुद तो ज़ोर नहीं करते, कहते- यार अब उमर नहीं रही। अलबत्ता लौंडे लपाड़ियों को शह देते और बला का शोरगुल करवाते। लेकिन कोई कभी जोश दिला दे या तबियत ही आख़िर उछल जाए, जो अक्सर ही होता, तो क्या कहना। कपड़े फेंक-फाँक कर लकड़बग्घा दाँव के पेंच दर पेंच दिखाने में जुट जाते, सारे शहर में और आसपास के इलाकों में पहलवानी का यह अद्‌भुत और अजीब दाँव पिता के ही अख़्तियार में था। हाँफते-हूँफते, मनमुदित घर लौटते, मोहल्ले दर मोहल्ले में हालचाल पूछते, सलाह-मशविरे ख़बरें बाँटते, घर के दरवाज़े पर हुलसकर आवाज़ देते- बाई, लो मैं आ गया...'

ऐसे जीवनरस में पगे, समाज में रचे बसे पिता से जीवन मूल्य मँझली पीढ़ी को मिले पर वह उन्हें अपने बेटे तक नहीं पहुँचा पाई, या समय ही ऐसा बदला कि उसके लिए जीवन से ये संलग्नता जारी रखना संभव ही नहीं हुआ, या जीवन की गति कुछ इस तरह बदली कि उसमें जीवन शैली और उसके साथ जीवन मूल्यों का बदलना भी अनिवार्य हो गया। बेटा जीवन की भागमभाग में बड़े शहर में रहते हुए पत्नी और बच्चे के साथ जीवन का आनंद लेना ही भूल गया है, उसकी शाम की पार्टियाँ भी यांत्रिकता में बदल चुकी हैं और जीवन मूल्यों में पैसा ही महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर चुका है। नतीजा ये है कि :

'बेटे के चेहरे पर भयावह और खोखले अट्टहास की बेशुमार परछाईयाँ हैं जिनमें से किसी के करुण स्वर में रोने की दहशत भरी आवाज़ें लगातार आती रहती हैं।'

और पिता तथा बेटे के बीच मंझली पीढ़ी है जो रास्ता भूले राही सी भौंचक देख रही है-

'दोनों के दरम्यान हमारी यह पीढ़ी है जो पीले उजाले और गहराते अँधेरे के बीच मोमबत्ती की तरह जल रही है, गल रही है और असहाय अपने समय का अंत देख रही है।'

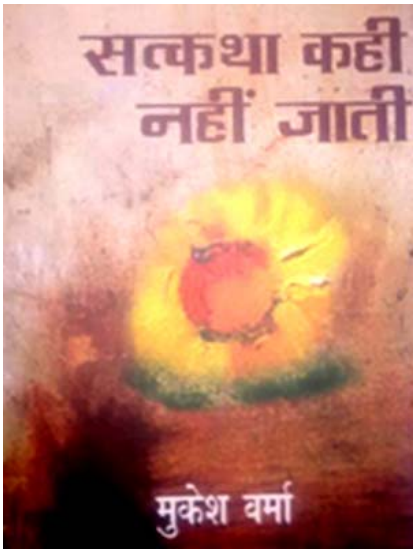


कहानी एक दार्शनिक टिप्पणी के साथ खत्म होती है जो निष्कर्ष के तरफ ढकेलने की कोशिश नहीं करती, मुकेश के यहाँ कथा का अंत अकसर खुला-खुला होता है, पाठक को अपने निष्कर्ष निकालने के लिए स्पेस देता हुआ।

'जूते' कहानी शायद इस संग्रह की सबसे भावप्रवण कथा है जो है तो एक सेक्युलर दृष्टि के समर्थन में लेकिन इसमें कोई वाचाल किस्म का सेक्युलरिज़्म नहीं है। दो हिंदू और मुस्लिम परिवारों के बीच सामाजिक एकता का ताना बाना पहले से ही मौजूद है। प्रेम और सौहार्द्र भी है। हिंदू परिवार का बच्चा मुस्लिम परिवार का लाड़ला है और चाचू और चाची इस 'मिट्ठे' के ऊपर अपना प्रेम बरसाते रहते हैं। फिर दंगा हो जाता है, दुकानें लुटने लगती हैं, पूरा बाज़ार लुट जाता है जिसमें चाचू की जूते की दुकान भी है। 'मिट्ठा' अब तक बड़ा हो चुका है और दोस्तों के बहकावे में आकर वह भी बाजार लूटने पहुँच जाता है। जो दुकान सामने पड़ती है वह चाचू की जूते की दुकान ही है जहाँ से वह एक ग़लत नंबर का जूता उठा लाता है और चाचू के घर में ही छुपा देता है। अब तक 'मिट्ठा' के घर में महफ़ूज़ चाचा और चाची जब अपने घर लौटते हैं तो मिट्ठे की चोरी पकड़ी जाती है। गहरे अपराध बोध और शर्म के कारण वह फूट-फूटकर रोता है। चाचा-चाची तय करते हैं कि ये बात 'मिट्ठा' के माता-पिता को नहीं बताएँगे। उन्हें पता है कि अगर यह बात उसके माता-पिता को मालूम पड़ी तो उसे गहरी प्रताड़ना झेलनी पड़ेगी। वे यह भी तय करते हैं कि उसे सही नंबर का जूता लाकर देंगे। बच्चे की स्मृति और भावनाओं की बुनियाद पर खड़ी यह कहानी आपको गहरे तक छू जाती है। अपराध बोध के लिए किसी बहुत बड़ी घटना की ज़रूरत नहीं होती। एक छोटी सी घटना भी आपका जीवन बदल सकती है। बिना वाचाल हुए ये कहानी आपसी रिश्तों, प्रेम और सौहार्द्र की सुंदर कथा बन जाती है।

'चार चतुर की बेकार कथा' लोक कथा की शैली में लिखी गई कथा है। तेजी से बदलती दुनिया में समय और व्यक्ति की पहचान, अवसरवाद, युवाओं में सफलता की परिभाषा और उसे पाने की आकांक्षा कुछ इस तरह से गड्‌ड-मड्‌ड होते हैं कि गहरे दोस्त भी एक-दूसरे को नहीं पहचान पाते। सफलता के आगे सारे मूल्यों को तिलांजलि दे दी जाती है और उसे पाने के लिए तमाम तिकड़में की जाती हैं। पर चारों दोस्त जब सफलता के शिखर पर पहुँचने के बाद मिलते हैं तो उन्हें व्यर्थता बोध भी होता है। 'रिश्ते' मानवीय प्रेम और करुणा की कथा है जहाँ असहनीय दुख के बीच स्त्री की दृढ़ता और प्रतिकार को रेखांकित किया गया है। इस कथा में समय का ट्रीटमेंट नॉन लीनियर किस्म का है। 'नेकलेस' नई, धन केंद्रित महिलाओं की कहानी है जो आज के समय में आदर्शवाद के खोखलेपन को पहचानती हैं और घर, परिवार, प्रेम आदि को बेकार की वस्तु मानती हैं। अपनी व्यावहारिकता को लेकर वे खुद आत्ममुग्ध हैं और उसे ही आज का सत्य मानती हैं। कहानी में भाषाई तनाव देखने योग्य है और आदर्श उसके पीछे से झाँकता रहता है। जो ऊपरी सतह पर कहा नहीं जा रहा है, वही संप्रेषित होता है।

'सौदागर' इस संग्रह की एक और अच्छी कहानी है। कहानी कॉलेज के दिनों की उस प्रेमिका के बारे में है जिस पर कथा नायक का प्रेम कभी जाहिर नहीं हो सका और लंबे समय के बाद नायक की उससे मुलाकात तब होती है जब वह जीवन में सफल हो चुका है और नायिका परेशानी में है। उसका

वर्तमान पति नायक के ही किसी उपक्रम में काम करता है और निकाले जाने की कगार पर है। वह नायक से उसे बचाने की गुहार करती है और अपने घर उसे खाने पर बुलाती है।

कॉलेज के ज़माने की नायिका के सौंदर्य से लेकर उसके वर्तमान वयस्क आकर्षण तक के अद्‌भुत चित्र कहानी में आते-जाते हैं। नायक के मन में उसे पाने की लालसा जागती है। नायिका इस बात को भली भाँति समझ रही है पर उसकी मूल चिंता अपने वर्तमान पति को बचाना है जिसने कठिन समय में उसका साथ दिया था। और यहीं कहानी का वह हाइ पॉइंट है जहाँ लेखक अपना लोहा मनवा लेता है,

'वह बुरी तरह रो रही थी। मैंने ठोड़ी पकड़कर उसका चेहरा ऊपर उठाया। वह आँसुओं से भरा था। छोटी सी नाक लाल हो गई थी। हथेलियों में रुमाल भिंचा हुआ था... आँखें अधखुली, स्निग्ध और भीगी हुई, बिल्कुल वैसी ही जैसी मैंने उन्हें पहली बार देखा था... लेकिन इस बार एक बात और भी थी जो पहले ना थी। उस बात से मेरे भीतर की दुनिया का बुनियादी हिस्सा भरभरा कर ढह गया। यकीनन ये वो आँखें नहीं थीं जो मेरे सूने मन में आज भी अक्सर टिमटिमाती थीं। उन आँखों में अब तक अदेखा ऐसा नूर था जिसे अपनी आँखों में समेटने की मेरी ताब नहीं थी। इसका सौदा नहीं हो सकता।'

इस अंत को पढ़कर आपको मनोहर श्याम जोशी का उपन्यास 'कसप' और वनमाली की कहानी 'जिल्दसाज़' एक साथ याद आएँगे। कथा में आए विवरणों से अगर आपकी धारणा ये बने कि मुकेश वर्मा स्त्रियों के प्रति पर्याप्त संवेदनशील नहीं हैं तो इस अंत से वे इस धारणा को दूर कर देते हैं। संग्रह की अंतिम कहानी 'प्रशिक्षण' अपने विस्तार में सुंदर है, जिसमें दोस्त, उनके परिवार, उनकी आदतें, निम्न मध्यवर्गीय परिवारों का मानापमान और सबसे बढ़कर भूख बड़ी शिद्‌दत के साथ आती है पर अपने अति आदर्शवादी अंत के कारण कहानी अंत तक पहुँच-पहुँचते थोड़ी कमज़ोर पड़ जाती है।

अपनी अन्य कहानियों में वर्मा एक खुला-तैरता हुआ सा अंत करते हैं जहाँ पाठक को सोचने के लिए पर्याप्त स्पेस मिलता है। इस प्रश्न उठाते, खुले-खुले अंत में मुकेश कहीं भी रुग्ण या मॉरबिड नहीं होते और कहानी अपने ब्लैक ह्यूमर के बाद जहाँ लैंड करती है वह नैतिकता की ज़मीन ही होती है। कुछ कहानियों के अंत देखिए :

दिलों की एक आवाज़ ऊपर उठती हुई-

'तो अब क्यों और कैसे-कैसे की रट लगा रखी है? अगर दिल की बात पूरी हो जाए तो भला आपको क्या और क्योंकर आपत्ति होनी चाहिए?'

सत्कथा कही नहीं जाती-

'और हाँ, सद्‌गुरू यह भी कहते हैं कि सत्कथा कही नहीं जाती, सुनी नहीं जाती, सिर्फ गुनी जाती है। और हाँ...लिखी तो जाती ही नहीं।'

वे लोग ये लोग-

'हम उस पीढ़ी के लोग हैं जो इस ठहरे हुए क्षण के साथ हमेशा के लिए ठहर गए और शाम और सुबह में फर्क नहीं कर सके।'

चार चतुर की बेकार कथा-

'अब क्या दोबारा लिखने की ज़रूरत है कि तपते भूखंडों की परिक्रमा करती हुई चींटी ने एक बार फिर...! वाहियात!!'

नेकलेस-

'श्रीमती अरुणा पाल बताती हैं कि... हाय उनके पास बताने के लिए कितना कुछ है और एक आप हैं जिन्हें सुनने की फुरसत ही नहीं...'

बिलैडी फूल-

'हवा हलके हलके चल रही थी। उसने दबाव देकर, भर ताकत दो चार पैडल मारे, साईकिल को फुल स्पीड में छोड़ दिया। हैंडल पर से दोनों हाथ हटाकर पूरे गले से हूपिंग करता हुआ फिर चिल्लाया, ऐसे जैसे कुछ बंदर अक्सर कठिन डाली से असंभव चट्‌टान पर छलांग लगाने के ठीक पहले किलकारी भरते हैं...'

सौदागर के अंत के बारे में हम पहले ही बात कर चुके हैं। मुकेश वर्मा की कहानी पाठक को किसी बने बनाए अंत की ओर नहीं धकेलती। उसके मन में प्रश्न खड़े करती है, सोचने के लिए जगह देती है और उसके अपने पाठ की निर्मिति की संभावना पैदा करती है। पाठक अपने आप को एक ऐसे रिलीफ पॉइंट पर पाता है जहाँ जीवन में उसका विश्वास लौटता सा लगे। लेकिन कहीं-कहीं, जैसे 'प्रशिक्षण' कहानी में, उनकी यही कोशिश कहानी को अपनी स्वाभाविक परिणति से अलग ले जाती है और वहाँ कथा कमज़ोर पड़ती है।

यहीं से उनकी कथा शैली पर भी कुछ समालोचनात्मक टिप्पणियाँ की जा सकती हैं। जैसे, क्या कहानी में भाषा और बनावट का अतिरेक कभी-कभी उसके पीछे छुपी भाव भूमि को, उसके प्रभाव को कम नहीं कर देता? क्या शैली का ही कथा बन जाना ठीक है और क्या वह लेखक के आगामी विकास में गतिरोध उत्पन्न नहीं करेगा? कथाएँ अक्सर निम्न मध्यवर्गीय परिवारों एवं कार्यालयों के इर्द-गिर्द घूमती हैं और यहाँ अनुभव के तथा विषयवस्तु के विस्तार की भी ज़रूरत महसूस होती है।

तो अब हम पूछ सकते हैं कि सत्कथा क्या है? आज के समय की सत्कथा यथार्थ और फैंटेसी के बीच झूलती हुई, पकड़ में आती और न आती हुई, निगाहों में भरती और ओझल होती हुई कथा है जिसे मुकेश वर्मा ने भाषा के वैविध्य, गद्य गति की समगतिशीलता तथा दृष्टि के पैनेपन के साथ पकड़ने की कोशिश की है। वे आभासी से दिखने वाले परिदृश्य में लोकेल या स्थान की स्थापना करते हैं और उसे समझने योग्य बनाते हैं, प्रख्यात बुंदेलखंडी विट के द्वारा उसे पठनीय और सहनीय बनाते हैं और कहीं कहीं लोककथा का फॉर्मेट अपनाते हुए उसे पाठक के निकट ले आते हैं।

समय के साथ उनके कई प्रयोग हैं और संवादों के साथ भी। वे ठेठ गद्य का ठाठ दिखाते हैं चित्रात्मकता के फेर में नहीं पड़ते। सबसे अच्छी बात ये है कि मुकेश कहीं रुग्ण नहीं होते। वे अच्छाई की भावना की डोर थामे रहते हैं और वहीं से हस्तक्षेप भी करते हैं। क्या यही कलाओं का मूल काम नहीं था?

❑❑❑

7-8, सेवॉय सावन कॉलोनी, होशंगाबाद रोड, भोपाल, मप्र, 462026
मोबाइल 9826256733

डायरी

# धरमिंदर पाजी दा जवाब नहीं

नीरज गोस्वामी

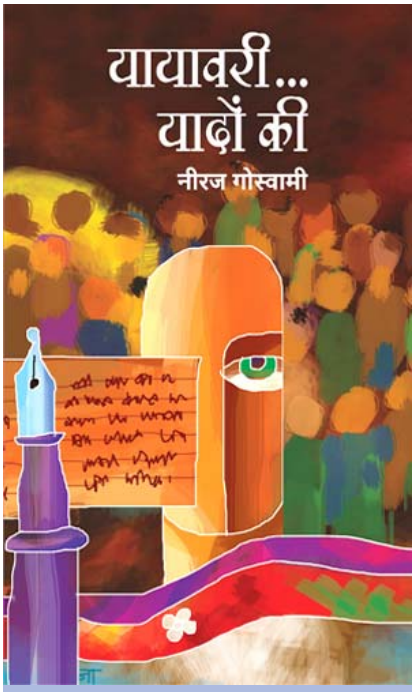


नीरज गोस्वामी की तीसरी पुस्तक यायावरी यादों की... संस्मरण पुस्तक है, जिसमें दिलचस्प शैली में लिखे गए उनके संस्मरण हैं, उनमें से ही एक संस्मरण यह भी है।

बात बहुत पुरानी है शायद 1977 के आसपास की...जयपुर से लुधियाना जाने का कार्यक्रम था एक कांफ्रेंस के सिलसिले में। सर्दियों के दिन थे। दिन में कांफ्रेंस हुई शाम को लुधियाना में मेरे एक परिचित ने सिनेमा जाने का प्रस्ताव रख दिया। अंधे को क्या चाहिए? दो आँखें...फ़ौरन हाँ कर दी।

खाना खाते-खाते साढ़े आठ बज गए थे, सो किसी दूर के थिएटर में जाना सम्भव नहीं था इसलिए पास के ही थिएटर में जाना तय हुआ। थिएटर का नाम अभी याद नहीं...शायद नीलम या मंजू ऐसा ही कुछ था। वहाँ नई फ़िल्म लगी हुई थी ''धरमवीर''। जिसमें धर्मेन्द्र और जीतेन्द्र हीरो थे। धर्मेन्द्र तब भी पंजाब में सुपर स्टार थे और अब भी हैं...''धरम पाजी दा जवाब नहीं'' वाक्य आप वहाँ खड़े हर दूसरे सरदार जी से सुन सकते थे।

बहुत लम्बी लाइन लगी हुई थी टिकट के लिए...इसकी कोई सम्भावना नहीं थी कि लाइन में खड़े हो कर टिकट मिल सकेगा। मेरे परिचित हार मानने वाले कहाँ थे, मुझसे बोले एक काम करते हैं मनेज्जर से मिलते हैं, आप सिर्फ़ उसके सामने इंग्लिश बोलना और कहना कि जयपुर से आया हूँ और धर्मेन्द्र पाजी का बहुत बड़ा फ़ैन हूँ...बस, काम हो जाएगा। मैनेजर तक पहुँचने की एक अलग कहानी है। सबसे पहले तो गेट कीपर को दस का नोट दिया जिसने हमें थिएटर में जाने दिया मिलने को।

मैनेजर साहेब एक ऊँचे तगड़े सरदारजी थे और फ़ोन पर किसी से बातों में व्यस्त थे, जिसमें बातें कम थीं और गालियाँ ज़्यादा थीं।..पंजाब में बात करने का एक ख़ास स्टाइल है...आप जिसके जितने आत्मीय होंगे उस के साथ उतनी ही गालियाँ बातचीत में प्रयोग करेंगे। हम क़रीब दस मिनट खड़े रहे। फ़ोन ख़त्म करके वो हमारी तरफ़ देख कर बोले हाँ जी दस्सो...(बताओ)। मेरे मित्र ने मेरे बारे में बताना शुरू किया कि ये जनाब जयपुर से आए हुए हैं और ''धरमिंदर पाजी'' के बहुत बड़े फ़ैन हैं अभी ये फ़िल्म वहाँ लगी नहीं है और ये इसे पहले देख कर इसका प्रचार वहाँ करेंगे...लेकिन समस्या टिकट की है इसलिए आप के पास आए हैं।

मैनेजर साहेब ने मेरी तरफ़ मुस्कुरा कर देखा...पूछा ''अच्छा जी तुसी जयपुर से आए हो? वा जी वा...लेकिन टिकट ते है नहीं...'' मैंने अंग्रेज़ी में कहा कि अगर मुझे ये फ़िल्म देखने को नहीं मिली तो बहुत अफ़सोस होगा और जयपुर में धर्मेन्द्र जी के फ़ैन क्लब वाले निराश हो जाएँगे...आप कुछ कीजिए प्लीज़... मेरी बात उन्हें कितनी समझ आई कह नहीं सकता लेकिन प्लीज़ ज़रूर समझ में आ गया, इसलिए वो बोले ''ओजी प्लीज़ की क्या बात है,चलो देखता हूँ तुवाड़े लयी क्या कर सकता हूँ''। वे ये बोल कर चल दिए...और दस मिनट में दो टिकट लेकर लौटे..और...टिकट की क़ीमत धर्मेन्द्र जी के नाम पर दुगनी वसूल कर ली।

टिकट लेकर हम लोग इतने ख़ुश हुए जैसे बहुत बड़ी जंग जीत ली हो...बाहर निकले तो देखा की अब लाइन टिकट विंडो की जगह थिएटर के गेट के सामने लग चुकी थी...धक्का-मुक्का और गालियाँ अनवरत जारी थीं। लोग अन्दर घुसने को बेताब थे...गेट कीपर जँगले वाला गेट बंद कर के आराम से खड़ा था। मैंने अपने परिचित से पूछा कि ये इतनी लम्बी लाइन क्यूँ लगा रखी है और भीड़ अन्दर जाने को बेताब क्यूँ है...उसने कहा कि टिकट पर सीट नंबर नहीं है इसलिए जो पहले घुसेगा उसे अच्छी सीट मिलेगी। ''मर गए'' मैंने मन में सोचा।

हम भी लाइन में जा खड़े हुए...अचानक ज़ोर का शोर हुआ और एक धक्का लगा एक रेला-सा आया जिसने मुझे और मेरे मित्र को लगभग हवा में लहराते हुए अपने आप थिएटर में पहुँचा दिया...अपने आप को सँभाल पाते तब तक हम थिएटर के अन्दर पहुँच चुके थे...थोड़ा अँधेरा था...परदे पर वाशिंग पावडर निरमा चल रहा था...सीट दिखाई नहीं दे रही थी...धक्के यथावत् जारी थे...मेरे परिचित ने मेरा हाथ कस कर पकड़ा हुआ था...हम किसी तरह पास-पास सीट पर बैठ गए।

बैठने के बाद मैंने देखा कि लगभग हर दूसरा सरदार अपनी पगड़ी खोल कर फहराता और पाँच छह सीटों को ढँक लेता...जिसकी पगड़ी के नीचे जितनी सीटें दब गईं वो उसकी...''ओये मल लई मल लई सीट असाँ'' (हमने सीट रोक ली है) का शोर मचा हुआ था। लोग सीट के ऊपर से इधर-उधर से यानी हर किधर से कूद-फाँद कर बैठने की कोशिश कर रहे थे। रात के इस शो में महिलाएँ कम नहीं थीं बल्कि वे भी इस युद्ध का हिस्सा थीं। कुछ कद्दावर महिलाएँ पुरुषों को धक्का देकर सीट पे बैठ चिल्लाती नजर आ रहीं थीं कि ''दार जी आ जाओ...सीट मल लई है मैं...मुंडे नू वी ले आओ...तुसी ते किसी काज होगे नहीं।''(सरदार जी आ जाइये सीट रोक ली है मैंने, लड़के को भी ले आओ, आप तो किसी काम के नहीं हो)। कोने में खड़ी चार पाँच लड़कियाँ जो शायद इंग्लैंड से आईं हुई थीं (उस ज़माने में अधिकतर लोग पंजाब से इंग्लैंड जा बसे थे और कभी-कभी अपने वतन लौटते थे) अपनी पंजाबी युक्त इंग्लिश ज़बान में गुहार लगा रहीं थी ''एय टॉर्च मैन हेल्लो टॉर्च मैन...तुम कहाँ हो टॉर्च मैन...सानू सीट पे बिठाओ प्लीज़''। उनकी ये अजीब ज़बान सुनकर अधिकतर लोग हँस भी रहे थे...टॉर्च मैन ने ना आना था ना आया...आता भी क्या करने?

फ़िल्म शुरू हुई...धर्म पाजी के आते ही ''जो बोले सो निहाल...सत श्री अकाल'' के नारे से पूरा हाल गूँज उठा। तालियाँ उनके हर एक्शन और संवाद पर जो बजनी शुरू होतीं तो रुकती ही नहीं। फ़िल्म भारी शोर-शराबे के बीच अनवरत चलती रही। जब लोग चुप होते तो हाल में चल रहे पंखों की आवाज़ सुनाई देने लगती।

इंटरवल हुआ...आगे पीछे देखा कि सारी सीटें भरी हुई हैं...कुछ लोग दीवार के साथ खड़े भी हैं...मित्र को कहा कि चलो कॉफ़ी पी कर आते हैं...हम लोग उठने की सोच ही रहे थे की अचानक पन्द्रह बीस लोग सर पर टोकरियाँ लेकर अन्दर आ गए...ध्वाने ले लो जी ध्वाने...(तरबूज़ ले लो जी तरबूज़) ...तिरछी फाँकों में कटे लाल तरबूज़ जिन पर मक्खियाँ आराम से विराजमान थीं देखते ही देखते बिक गए...इसके बाद खरबूज़े, चना जोर गरम, समोसे, जलेबी, मुरमरे, पकोड़े और तली मछली का नंबर भी इसी तरह आया...

मैंने सोचा जो लोग फ़िल्म के इंटरवल में आधी रात के बाद इतना कुछ खा सकते हैं वो लोग खाने के समय कितना खाते होंगे? लगता था कि लोग शायद इंटरवल में खाने अधिक आए हैं और फ़िल्म देखने कम...या फ़िल्म के बहाने खाने आए हैं। खाने पीने का ये दौर फ़िल्म शुरू होने के बाद तक चलता रहा, लोगों के मुँह से निकली चपड़-चपड़ की आवाज़ें फ़िल्म से आ रही आवाज़ से अधिक थी।

एक दृश्य जिसमें धर्मेन्द्र एक गुंडे की ठुकाई कर रहा था परदे पर आया...गुंडा कुछ अधिक ही पिट रहा था...तभी एक आवाज़ आयी...''ओये यार बस कर दे मर जाएगा''...दूसरी तरफ़ से आवाज़ आयी ''क्यूँ बस कर दे? गुंडा तेरा प्यो लगदा ऐ? (क्यूँ बस कर दे गुंडा क्या तेरा पिता लगता है)। पैसे दित्ते ने असाँ...मारो पाजी तुसी ते मारो...'' अब पहली तरफ़ से दूसरी तरफ़ लहराती हुई चप्पल फेंकी गई...येही कार्यक्रम दूसरी तरफ़ से चला...चप्पलों का आवागमन तेज़ हो गया....अब चप्पलों के साथ गालियाँ भी चलने लगीं...तभी एक कद्दावर सरदार ऊँची आवाज़ में बोला...''ओये ऐ खेल ख़तम करो फिलम देखन देयो...जिन्नू लड़ना है बाहर जा के लड़े...हुन किसी ने गड़बड़ कित्ती ते देखियो फेर सर पाड़ देयाँगा...''(ओ ये खेल ख़त्म करो फ़िल्म देखने दो ...जिसने लड़ना है बाहर जा कर लड़े...अब किसी ने गड़बड़ की तो सर फोड़ दूँगा) सरदार जी की बात का असर हुआ...जो बोले सो निहाल का नारा फ़िर से लगा और फ़िल्म अंत तक बिना रुकावट के चलती रही....

बाहर निकल कर रिक्शा किया तो रिक्शा वाला बोला ''साब जी मैं पिछले तिन दिना विच ऐ फ़िल्म तिन वारि देख चुक्या हाँ...धरमिंदर पाजी दा जवाब नहीं....जी करदा है तिन वारि होर वेखाँ...''

लुधियाना में देखी ये फ़िल्म और माहौल मैं कभी नहीं भूल पाता। आज के मल्टीप्लेक्स ने सिनेमा देखने के इस आनंद का बड़े शहरों में तो कचरा कर ही दिया है।

❐❐❐

बी-44, प्रभु मार्ग, तिलक नगर, जयपुर 302004
मोबाइल 9860211911

**एक आवश्यक सूचना**

मित्रो, 2016 से मैं और पंकज सुबीर अंतरराष्ट्रीय पत्रिका विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी से जुड़ चुके हैं; जो भारत और अमेरिका की साझी पत्रिका है और पूरे विश्व में इनका विस्तार है। 2015 तक हम हिन्दी चेतना के साथ थे पर अब हमारा उससे कोई नाता नहीं। हिन्दी चेतना के संचालकों ने निर्णय लिया है, वह सिर्फ कैनेडा की ही पत्रिका रहेगी। भारत में उसका प्रकाशन बंद कर दिया गया है। कई मित्र हमारे इनबॉक्स में और ईमेल द्वारा अपनी भेजी गई सामग्री के बारे में हमसे जानना चाहते हैं। कृपया अगर आपको इन पत्रिकाओं के लिए सामग्री भेजनी है तो निम्न ईमेल पर भेजें, हम आभारी होंगे और साथ ही यह जानकारी भी दें कि आपको पत्रिकाएँ कैसी लगीं!

vibhomswar@gmail.com
shivna.prakashan@gmail.com

-सुधा ओम ढींगरा

# सिनेमा एक कला और तकनीक

कृष्णकांत पंड्या

*(कृष्णकांत पंड्या एक जाने-माने फिल्म निर्देशक हैं, जिन्होंने पूर्व में इस्माइल श्राफ के साथ सहायक निर्देशक के रूप में थोड़ी सी बेवफाई, आहिस्ता-आहिस्ता, दिल आख़िर दिल है, झूठा सच, लव 86 जैसी फिल्में कीं। फिल्म हत्या के एसोसिएट निर्देशक रहे और सूर्या फिल्म के चीफ एसोसिएट निर्देशक रहे। निर्देशक के रूप में उन्होंने पनाह और बेदर्दी जैसी फिल्मों का निर्देशन किया। इसके अलावा उन्होंने कई टीवी सीरियल्स का भी निर्देशन किया जिनमें रानी पद्मिनी, पृथ्वीराज, श्रीकृष्णा आदि धारावाहिक प्रमुख हैं। वे अभी भी फिल्मों में सक्रिय हैं तथा उनकी निर्देशित की हुई दो फिल्में शीघ्र रिलीज़ होने वाली हैं। एक फ़िल्म बियाबान द कर्स बाय वीमन को फ़िल्म फेस्टिवल्स में काफी सराहना मिल रही है। शिवना साहित्यिकी के पाठकों के लिये वे धारावाहिक रूप से फिल्मों में लिखने की प्रक्रिया, स्क्रिप्ट, संवाद आदि के बारे में जानकारी देंगे, जिससे लेखकों को फिल्मों के लेखन के बारे में जानकारी मिल सके।)*

पञ्च तन्त्र की कहानियों को जब हम पढ़ते हैं तो रुचि बनी रहती है। उसमें कहानी में से कहानी निकलती है और फिर मुख्य कहानी पर लाया जाता है। शायद यही से स्क्रीन प्ले का तरीका निकाला गया हो। साहित्य में-विशेष कर नीतिकथा में तो मनोरंजन ही प्रधान है। उसमें पञ्च तन्त्र के रचयिता श्रीमान् विष्णु शर्मा ने जो कुछ कार्य किया है वो सर्वथा अभिनन्दनीय है। आज बच्चों की नर्सरी टाइम्स व बच्चों के विश्वभर की मनोरंजक पुस्तकों (सचित्र) की प्रेरणा स्त्रोत पञ्च तन्त्र ही है। आज की अरबों रुपये कमाने वाली फिल्म 'द जंगल बुक' सन् 1942, 1998 में भी बनी और खूब चली। ये पूरी तरह जानवरों व पक्षियों को लेकर पञ्च तन्त्र के स्क्रीन प्ले- 'बेक एण्ड फोर्थ' तकनीक प्रेरित है।

किसी भी फ़िल्म के स्क्रीन प्ले और लिखित कहानी व उपन्यास में मूल फर्क छवियों का है। कहानी को पढ़ते समय हर पाठक के कल्पना लोक में चरित्रों व ख़ासकर दृश्यों और पार्श्व दृश्यों की छवि अपने-अपने हिसाब से बनती है, जिनमें 16 से 20 का फर्क हो सकता हैं, पर फिल्म में वो सब के लिए 20 ही होता हैं क्योंकि, वो दृश्य और छवियाँ निर्देशक की कल्पना होते हैं। और फिल्म का दूसरा अहम पहलू आवाज़ है, जिसमें संवादों की अदायगी के साथ की उनकी ध्वनियाँ, पार्श्व संगीत, उस माहौल की आवाज़ें और इन सबका प्रभावी मिश्रण होता है। अगर ये ध्वनि मिश्रण वास्तविक बन पड़ा तो सीन की भावना को प्रभावी बनाकर दर्शक का पूर्ण मनोरंजन कर देता है और अगर, उदाहरण के तौर पर कौओं की आवाज़ें या बच्चे के चीख-चीख कर कर्कश तरीके से रोने की आवाज़ संवादों या गाने को डिस्टर्ब करती हैं, तो दर्शक ऊबने लगता है और सीन मार खा जाता है। लिखित कहानी को पढ़ते समय साउंड की भूमिका होती ही नहीं, इसलिए कभी-कभी ख़राब उपन्यास पर अच्छी फ़िल्म बन जाती है और अच्छे उपन्यास पर ख़राब फ़िल्म, क्योंकि, इस सारे ताल-मेल को अगर स्क्रीन प्ले के ज़रिए डायरेक्टर ने सभी तकनीकी सहयोग से रुचिकर बनाया तो वो फ़िल्म अच्छी बन जाती है। अच्छी से मेरा मतलब सफल या असफल फ़िल्म से कतई नहीं है।

...अं.... थ्योरी बहुत हो गई ना? चलिए अब प्रेक्टिकल किया जाए। आज मैं आपको तीन हिन्दी फ़िल्मों के स्क्रीन प्ले के उदाहरण दूँगा। पहली है एम.एस. धोनी- 'द अन टोल्ड स्टोरी'। इस फिल्म की शुरूआत खचाखच भरे वर्ल्डकप के फाइनल के स्टेडियम के उत्साह भरे माहौल से होती है। और धोनी अपनी बारी से पहले खेलने की कहता है और फिर कहानी को फ्लेश बैक में ले जाने का सीन शुरू होता है, जैसा कि 'मदर इन्डिया' फ़िल्म में भी होता है, जब नरगिस जी (बूढ़ी औरत) के हाथ से नहर की ओपनिंग करने के दृश्य के साथ ही फ्लेश बैक में कहानी शुरू होती है। पहले सीन को पूरा नहीं किया गया है, दोनों फ़िल्मों में। पूरी फ़िल्म जब ख़तम होने वाली होती है, तब उसी पहले वाले अधूरे सीन को पूरा किया जाता है। क्योंकि एक जिज्ञासा बनी रहती है कि ये बूढ़ी औरत कौन है और इसी के हाथों उद्घाटन क्यों? और उधर धोनी की कहानी ज़रूरी नहीं कि सब को पता हो, कि भारत उसकी कप्तानी में वर्ल्डकप जीता था, जिसे नहीं पता उसके लिए भी जिज्ञासा बनी रहती है और जो जानते हैं उनके लिए भी कि फिल्म में हम उन ऐतिहासिक क्षणों को वापस देख कर उत्साहित होंगे, दोनों ही तरह के दर्शक मनोरंजन करते हैं। इस तरह की शुरूआत हमने कई-कई फ़िल्मों में देखी है। इससे फ़िल्म की कहानी को शुरू करने में एक लीप, एक उछाल मिलता है। वर्ना सीधे-सीधे धोनी के बचपन से शुरू करने अन्त में आ जाओ, पर माहौल नहीं बनता, ख़ासकर आटो बायो ग्राफिकल फ़िल्म्स में। स्क्रीन प्ले की यह विधा उपन्यासों से आई लगता है। कुछ आटो बायो ग्राफिकल फ़िल्म्स डाक्यू ड्रामा बन के रह जाती हैं जो उबाउ हो जाती हैं। पर क्योंकि फ़िल्म मुख्य तौर पर मनोरंजन का माध्यम है इसलिए, धोनी में इस बात का पूरा ख़याल रखा स्क्रीन प्ले राइटर नीरज वोरा व दिलीप झा ने। ये एक महत्त्वाकांक्षी युवक की भावनाओं के उतार-चढ़ाव की स्क्रिप्ट है।

उसकी इच्छाएँ, लगन, कर्म माता-पिता की इच्छाओं का सम्मान, अपना क्रिकेटर बनने का शौक़ और मोहब्बत ये सारे बिन्दु कहानी में तो लिख लिए जा सकते हैं पर स्क्रीन प्ले में इन बिन्दुओं को ध्यान में रखकर सीन बनाए जाते हैं और उन दृश्यों से समूह से उपरोक्त भावनाएँ उभर कर आती हैं। अब आपने देखा होगा कि रेल्वे की जॉब करते-करते धोनी कुंठित हो चुका है, जबकी साथ-साथ खेल की प्रेक्टिस भी कर रहा है, तब जब वो रात को सुनसान स्टेशन पर बैठा है और एक ख़ाली ट्रेन आती है वो उसमें चढ़ जाता है। ये एक प्रतीकात्मक दृश्य है और दर्शक को अच्छा भी लगता है, वो इसलिए कि अब तक उसकी कुंठा दर्शक की कुंठा बन चुकी है वो भी इन हालात से मुक्ति चाहता है। आ गया न इमोशन। इसी तरह दर्शकों को धोनी की प्रेमिका की दुर्घटना पहले दिखा दी और धोनी को धोनी बन जाने के बाद जब पता चला, तब वो बीच रास्ते सुनसान सड़क पर उतर कर दोस्तों को जाने को कह कर आम आदमी की तरह फूट-फूट कर रोता है, क्योंकि वो उसका अपना इन्सानी दु:ख है जिसे वो सफल व प्रसिद्ध व्यक्ति की तरह सब के सामने व सबके साथ नहीं बाँटना चाहता। पर इस क्रन्दन के लिए कितने दृश्य पहले गढ़े गए।

दूसरी फिल्म है, शिवाय, ये एक भावना प्रधान एक्शन फिल्म है। इसका स्क्रीन प्ले सीधा-सीधा चलता है और इसीलिए इसमें इमोशन्स उभर कर आते हैं, पर क्योंकि, इसके एक्शन सीन लम्बे और अतिरंजित हैं इसलिए भावुकता पर रोमांच भारी पड़ गया है वर्ना ये और भी सफल व दिल को छूने वाली बन जाती ख़ैर जो हुआ उसी में से हम स्क्रीन प्ले का निचोड़ निकाल लें। मैं फिर से एक बार आपको व नए पाठकों को बता दूँ कि किसी भी कहानी को फिल्म के पर्दे के लिए सीन-दर-सीन बनाने की कला और तकनीक को स्क्रीन प्ले यानी कि पटकथा कहा जाता है और संवादों के साथ और अगर हो सके तो कैमेरा मूवमेन्ट व शॉट डिवीज़न को स्क्रिप्ट कहा जाता है। उसमें, माहौल, पात्र, मौसम आदि भी इंगित होते हैं।

... हाँ तो, शिवाय का स्क्रीन प्ले अगर एक बच्ची को उसका पिता उसकी विदेशी माँ को मिलाने बल्गारिया (विदेश) में आता है वहाँ से शुरू किया जाता तो उन दोनों (बाप-बेटी) के इमोशन्स डेवलप नहीं होते। क्योंकि क्रिया के बाद प्रतिक्रिया आती है। इस फिल्म में माँ नहीं चाहती थी कि हीरो के साथ की मोहब्बत की निशानी आए, पर वो गर्भवती हो जाती है और बच्ची की सूरत देखे बिना वो बल्गारिया चली जाती है। (मानसिक रूप से वो अभी माँ नहीं बनना चाहती थी) पर क्योंकि हीरो शिवाय है इसलिए वो तो गूँगी बेटी को ख़ूब प्यार करता है। और उसे उसकी ज़िद पर माँ को ढूँढ़ने बल्गारिया ले आता है पर यहाँ उसकी बेटी किडनेप कर ली जाती है, इस कहानी के स्क्रीन प्ले में जब तक ये भावनाएँ पिरोकर पहले नहीं आतीं तब तक इमोशन्स परिपक्व नहीं होते, इसीलिए इस फिल्म के स्क्रीन प्ले को मैं अच्छा मानता हूँ, हाँ, पुन: कहूँगा एक्शन व थ्रिलिंग सीन की लम्बाई कम की जा सकती थी, गति उनकी बहुत अच्छी है, लोकेशन्स बहुत अच्छी हैं, थ्रिल के क्षण अच्छे और फिल्म की निर्माण गुणवत्ता भी अन्तर्राष्ट्रिय स्तर की है।

....और अब थोड़ा ''ऐ दिल है मुश्किल'' की बात अपने संदर्भ में की जाय। वैसे तो इस धारावाहिक लेख का नाम 'पेपर से पर्दे तक' है, पर आजकल मैं सिर्फ स्क्रीन प्ले पर आपका जानकारी दे रहा हूँ, ऐ दिल है मुश्किल जैसा नाम है वो चरितार्थ है इस फिल्म में दिल प्यार पाना चाहता है पर जब वो जिसे प्यार समझता है वो कुछ ओर है और जिसे वो ओर कुछ समझता है वो प्यार होता है। है ना विचित्र बात। पर हाँ आजकल तो है ही ऐसा और पहले से ही चला आ रहा है, पौराणिक युग से मानवता के ज्ञात इतिहास के युग से आए तो देवदास के प्यार और

चन्द्रमुखी के प्यार में फर्क कुछ भी नहीं है सिर्फ हमने देवदास और पारो के प्यार को तवज्जो ज़्यादा दी क्योंकि अगर कहानी में चन्द्रमुखी को बचपन से देवदास को प्यार करते दिखाते और पारो बाद में आती तो चन्द्रमुखी सारी सहानुभूति लूट लेती। ऐसा ही होता है स्क्रीन प्ले का कमाल। ...तो ए दिल है मुश्किल में भी अनुष्का देवदास है चन्द्रमुखी रूपी रनबीर कपूर के लिए और ऐश्वर्या चन्द्रमुखी ही है जिसके पास देवदास रूपी रनबीर है। इस कहानी को आधुनिक युवा वर्ग के लिए लिखा गया है जिनको किसी के भी साथ सेक्स से परहेज़ नहीं है, क्योंकि इनके लिए सेक्स शारीरिक आवश्यकता है और प्यार रूहानी सुगन्ध, इसलिए इस फिल्म का नायक उस रूहानी सुगन्ध की तलाश में भटकता रहता है और जिसे वो सुगन्ध समझता है वहाँ पारो कह देती है कि ये तो सिर्फ दोस्ती है। क्योंकि पहले लड़का-लड़की की दोस्ती मतलब प्यार ही था (आज भी भारतीय समाज में यही मानसिकता है।) पर अब दोस्ती ने सब गड़बड़ कर दिया है प्यार के साथ, पर एक बात है कि युवा दिलों के लिए (चाहे उम्र कुछ भी हो जैसे कि मैं) ए दिल है मुश्किल की स्क्रिप्ट, वो बेबसी दिल की वो बेचारगी अच्छे से बयाँ करती है, जो कि सीधी स्क्रिप्ट है। है ना कुछ अद्‌भुत प्रयोग।

प्रयोग धर्मी अगर प्रयोग ही ना करें, तो क्या ख़ाक आविष्कार करेंगे?

धन्यवाद!

क्रमश:

❐❐❐

2603, ऑबराय स्पलेन्डर, मजास डेपो के सामने, जे.वी.एल.आर.
अंधेरी(पूर्व), मुम्बई 400060
फ़ोन 02228387112

यात्रा-वृत्तांत

# नीले सागर पर मरकत से बिखरे हैं अंडमान निकोबार द्वीप

संतोष श्रीवास्तव

शैली की कविता है

मैनी अ ग्रीन आइल नीडस् मस्ट बी/इन द डीप वाइड सी ऑफ मिज़री/ऑर द मैरिनर वॉर्न एंड वान/ नेवर दस कुड वॉयज़ ऑन।

हरे-भरे द्वीप अवश्य ही होंगे/ व्यथा के गहरे और फैले सागर में /नहीं तो थका हारा सागरिक/कभी ऐसे यात्रा करता ना रह सकता।

अचंभित हूँ मैं मुग्ध भी। भारत के नक्शे से अलग-थलग बंगाल की खाड़ी में उत्तर दक्षिण की ओर 780 किलोमीटर क्षेत्र में फैले छोटे-छोटे द्वीप समूह जिनका भूभाग 8293 किलोमीटर तक फैला है, अंडमान निकोबार द्वीप समूह नाम से जाने जाते हैं और इन्हें देख कर मेरा सागरिक मन सोचने लगता है कि इसका नाम अंडमान यों पड़ा होगा कि हनुमान जी लंका की खोज में यहीं से गुज़रे थे और उनका नाम अंडमान भी है। सागर के हजारों किलोमीटर फैले वक्ष स्थल पर आरती की सजी थालियों से तैरते ये द्वीप....। 570 द्वीपों में से केवल 38 पर मानव आबादी है। इनमें 26 द्वीप अंडमान में हैं और 12 निकोबार में। पूर्वी हिमालय से होते हुए म्याँमार, अराकान, और सुमात्रा के डूबे हुए पर्वतीय श्रंखलाओं के शिखर हैं यह द्वीप समूह। उष्णकटिबंधीय मौसम, चारों ओर हरियाली से भरे भारत के ये द्वीप दुनिया के हवाई द्वीपों के अनुरूप ही हैं। जैसी कल्पना की थी उससे कहीं अधिक सुंदर, अनदेखे, अनछुए प्रकृति की सुंदर संरचना से परिपूर्ण मानों कुदरत के करिश्मे का प्रवेश द्वार हों।

लेकिन तब .....जब भारत पर ब्रिटिश शासन था और जब 1857 का ग़दर हुआ था और जब अंग्रेजों ने अंडमान को एक बड़े क़ैदखाने के रूप में परिवर्तित कर दिया था। घने जंगल, बड़े बड़े मच्छर, जोंक, हहराता अथाह सागर..... मातृभूमि से हज़ारों किलोमीटर दूर इन जंगलों में बने क़ैदखाने में जहाँ की कोठरियों में न प्रकाश का इंतजाम था न जीवन का कोई उल्लास कैसे काटी होगी उन आज़ादी के दीवानों ने उम्र क़ैद या फाँसी की सज़ा का इंतज़ार। वे आपस में बातचीत तक नहीं कर सकते थे। नारियल के टुकड़ों पर बुलबुल का झुंड चहकता बस इतना ही शोर था जीवन में। अहो ! दुर्भाग्य कि सजा पाने वाला भी हिंदुस्तानी, देने वाला भी हिंदुस्तानी, 2 निगरानी करने वाला भी हिंदुस्तानी, बस सज़ा सुनाने वाले भर अंग्रेज़। सालों साल गुज़रे हैं इस यातना में। मातृभूमि के लिए तड़पते इन शूरवीरों को कहाँ दिखा होगा रंग बिरंगा सागर ? उन्हें तो बस दिखा होगा काला पानी जिसे तैरकर उस पार पहुँचने के उनके ख़्वाब हर रात चकनाचूर हुए होंगे।

सेल्युलर जेल राष्ट्रीय स्मारक है जिस में क़ैदियों को दी यातनाओं के दस्तावेज़ है। मेरे साथ है लेखिका प्रमिला वर्मा, पोर्ट ब्लेयर के पत्रकार महेद्र और गौतम तथा गाइड व्यंकटेश। जैसे पैरों में पंख उग आए हों। प्रवेश द्वार के दाहिनी ओर की लकड़ी की सीढ़ियाँ मैं लगभग दौड़ते हुए तय करती हूँ। सामने नेताजी सुभाष चंद्र बोस के जीवन का लेखा-जोखा विभिन्न तस्वीरों में प्रदर्शित किया गया है। नीचे उतरते ही एक बड़े हॉल में जेल का मॉडल रखा है। वेंकटेश बताते हैं 'अंडमान को एक बड़े क़ैदखाने के रूप में परिवर्तित करने का काम 1896 में ख़ौफनाक अंग्रेज़ चीफ कमिश्नर एडिम की निगरानी में शुरू हुआ। सोचा गया कि 3 साल में काम पूरा हो जाएगा पर लग गए 10 साल।

सेल्युलर जेल में सात विंग बनाई गईं। प्रत्येक विंग तीन मंज़िली थी। कुल 698 काल कोठरियाँ बनीं। साढ़े 13 फीट लंबी और 7 फीट चौड़ी उन कोठरियों में क़ैदियों के लिए टॉयलेट की कोई अलग व्यवस्था नहीं रखी गई। सातों विंग में तीन करोड़ ईंटें लगी जो इंडोनेशिया, बर्मा से जहाजों में भरकर यहाँ लाई गईं।

'उतनी दूर से ?'

ये द्वीप यहाँ से हैं ही कितनी दूर। बल्कि जावा, सुमात्रा द्वीप भी यहाँ से 100 से 500 किलोमीटर की दूरी पर ही तो है। उस ज़माने में इसको बनाने में 517352 रुपये खर्च हुए। भारत से 600 क़ैदियों की पहली खेप काले पानी की सजा काटने यहाँ लाई गई। जेल की विंग की घोर अंधकार भरी कोठियों में इन्हें रखा गया। हर एक विंग का आपस में कोई कनेक्शन नहीं था। कैदियों के अपनी-अपनी वर्कशॉप में जाने के रास्ते अलग-अलग थे। ताकि आपस में कोई मिले ना। तीन मंज़िली इमारत में एक विंग से दूसरी विंग में लकड़ी के फट्टों से जाया जाता था। बाद में फट्टे हटा दिए जाते थे। प्रत्येक

कोठरी की साँकल को आले में घुसा कर ताला लगा दिया जाता था। न आले तक कैदी का हाथ पहुँचेगा न वह जेल से भागने की सोचेगा।

'क्या दिमाग पाया है अंग्रेज़ों ने, जैसे क़ैद न हो चक्रव्यूह हो'

'चक्रव्यूह ही था मैडम।'

3 महेंद्र ने कहा 'असल में भारत से इतनी दूर अथाह सागर से घिरे इस द्वीप पर जेल बनाने का मकसद ही कैदी को आपसी संवाद, मेलजोल, आज़ादी की योजनाओं आदि से दूर रखना था। उनकी सज़ाएँ भी भयानक थीं। ये कोठरियाँ भी उन्हें तब नसीब होती थी जब वे तीन तरह की सज़ाएँ पहले भुगत लेते थे। चेन फटेटर सज़ा जिसमें कमर और पैर लोहे की छड़ में फँसा कर दोनों हाथ कमर में चेन से बाँध देते थे। न कैदी बैठ सकता था न हिलडुल सकता था। बस पैर हिला सकता था। दूसरी सज़ा बार फ्टेटर थी। इसमें हाथ पैर दोनों चेन से बाँध देते थे। तब न हाथ पैर हिला सकते थे ना कोई काम कर सकते थे। तीसरी सज़ा थी क्रॉस फ्टेटर। इस में लोहे की चेन कमर से पैर तक बँधी रहती थी। तीनों सज़ाएँ हफ्ता-हफ्ता भर भुगत कर वह काल कोठरी में लाया जाता था वहाँ भी उसे हथकड़ी बेड़ी में जकड़ कर रखा जाता था। गर्दन के हिसाब से लोहे का रिंग डालकर लकड़ी के लंबे टुकड़े पर उनका परिचय, सजा की तारीख, क़ैदी नंबर आदि लिखा जाता था। वही नंबर उनकी पहचान था, संबोधन था। कोठरी में कटोरे में दो डिब्बे पीने का पानी 24 घंटे के लिए दिया जाता था। दूसरे कटोरे में क़ैदी टट्टी पेशाब करते थे। नहाने के लिए समुद्र का खारा पानी था। जो शरीर पर सूख कर खुजली पैदा करता था। कितने ताज्जुब की बात है कि चारों ओर नमकीन जल का साम्राज्य लेकिन खाना फीका, बिना नमक के उबले चावल, पनीली दाल, कच्ची अधजली रोटियाँ, सब्जियों में कीड़ों की भरमार रहती। क्योंकि अंडमान द्वीप समूह नारियल और सुपारी के वनों से आच्छादित थे अत: इन कैदियों के काम थे प्रतिदिन कोल्हु से 30 पौंड नारियल का तेल निकालना, तीन सेर नारियल के रेशे से रस्सी बुनना, नारियल के छिलकों को

कूटना। काम पूरा न कर पाने की स्थिति में टाट की वर्दी पहना कर धूप में जंगल में लकड़ी काटने भेजा जाता था। टिकटी से बाँधकर नंगी पीठ पर तब तक कोड़े मारे जाते जब तक खून न छलक आए। काम पूरा होने पर प्रथम श्रेणी के क़ैदी को एक आना 9 पाई मजदूरी मिलती थी। बाद में प्रथम श्रेणी का तीन आना, द्वितीय का ढाई आना और तृतीय का एक आना तय किया गया।

1922 से 1930 के बीच मलाबार के मोपला विद्रोही और आंध्र प्रदेश के रंपा विद्रोही भी अंडमान भेजे गए।

4 मैं पहली मंज़िल पर हूँ जहाँ की 4 कोठरियों में फाँसी की सज़ा प्राप्त क़ैदी रखे जाते थे। एक-एक कोठरी जैसे उनकी पीड़ा की कहानी कहती थी। 'वह देखिए मैडम नीचे लॉन में जो सफेद चूने से पुता बिना पायों का बैंच जैसा है ना, फाँसी घर ले जाने से पूर्व यहाँ क़ैदी को मीठे पानी से स्नान कराकर पूजा पाठ कराया जाता था। उसके पीछे वह फाँसी घर है।'

मेरे रोंगटे खड़े हो गए। एक छोटे से कमरे में तीन मोटे-मोटे फाँसी के फंदे झूल रहे थे। वेंकटेश को बताना था, बता रहा था। भावनाओं में तो मैं बही जा रही थी। जैसे आज से सौ साल पहले मुझे यहाँ फाँसी दी गई हो। फाँसी एक साथ तीन क़ैदियों को दी जाती थी। बाद में उनकी लाश का कोई अंतिम संस्कार नहीं होता था। देश के लिए शहीद होने वाले ये मतवाले सेनानी जेल की दीवार से लगे समुद्र में फेंक दिए जाते जहाँ उनकी लाश मछली, मगर का भोजन बनती। आज़ादी की क्या यही क़ीमत है ? मेरी आँखें छलछला जाती हैं। कितनी पीड़ा, कितनी निर्मम मौत। 'यह जो सभी विंग्स के बीच लाइट हाउस है उस समय यहाँ खड़े होकर गार्ड सातो विंग की निगरानी करता था। फाँसी के समय लाइट हाउस से ज़ोर-ज़ोर से घंटे बजने आरंभ होते थे और लाइट इतनी तेज़ जलती कि समुद्र में दूर से आते जहाज के यात्रियों को पता चल जाता कि तीन क़ैदियों को फाँसी दी गई है। उस दौरान फाँसी घर में 87 क़ैदियों को फाँसी दी गई और उस निर्मम हिंदुस्तानी गार्ड को फाँसी से कोई मतलब नहीं था। उसका काम था निगरानी करना और फाँसी के बाद उजाले का जश्न मनाना। लेकिन कहते हैं किसी भी चीज की इंतहा बर्बादी का कारण है।

17 मई 1941 को चाथम द्वीप पर रॉयल एयर फ़ोर्स जापान द्वारा बम गिराए गए। इस बमबारी में सेल्यूलर जेल के चार विंग नष्ट हो गए। आजादी के बाद इन चारों विंग्स के मलबे से अंडमान के सबसे बड़े अस्पताल गोविंद बल्लभ पंत अस्पताल का निर्माण उसी जेल भूमि पर किया गया। पहले जहाँ कैदियों का लकड़ी से बना अस्पताल था वहाँ शहीद स्तंभ बना है जिसका निर्माण 1979 में किया गया। प्रथम विश्व युद्ध से पहले जो शहीद हुए थे यह उन्हीं की स्मृति में बना है। शहीद स्तंभ की ओर जाने वाली सीढ़ियों के बाँई ओर शहीद ज्योति है जो हमेशा जलती रहती है। दाहिनी ओर पीपल का वह ठूँठ है जो उस जमाने का मूक साक्षी है और जो लाइट एँड साउंड शो में सिसकते स्वरों में ओमपुरी की आवाज़ में उस समय की यातनाओं भरी कहानी कहता है। विनायक दामोदर, इंदुभूषण रॉय, बाबा भान सिंह, पंडित रामसखा, महावीर सिंह, मोहन किशोर नामदास, मोहित मोइत्रा सबके लिए सज़ाएँ सुनाता था, टॉर्चर के हुक्म देता था, सामने कुर्सी पर बैठा जेलर डेविड। 123 नंबर की कोठरी में वीर सावरकर रहते थे। जिनकी कोठरी पर लिखे वाक्य विवाद का विषय बने थे। उनके भाई गणेश सावरकर भी उसी दौरान सेल्युलर जेल में थे। पर दोनों भाइयों को इस बात का पता न था। वतन छुड़ाकर दूर समंदर से घिरे एक वीरान टापू पर लाए गए स्वतंत्रता वीरों की आह का असर..... अत्याचारी डेविड कलकत्ते जाकर मरा। उसे अपना वतन भी दुबारा देखना नसीब नहीं हुआ। मैं डूब गई हूँ आकंठ उस काले पानी में जिसकी यातना भरी कहानी मेरी रग-रग

में नुकीले दंश चुभो रही है। जब मैं रुमाल से अपनी आँखें पोछती हूँ तो मेरे बाजू में बैठा चिप्स खाता हनीमून जोड़ा मुझे आश्चर्य से देखता है। सोचती हूँ .....भावना कितनी अर्थहीन होती जा रही है। ज़माने की बदली हवा का असर कि इतने ग़मगीन माहौल में भी लोग अपना मनोरंजन ढूँढ़ लेते हैं।

सेल्युलर जेल के निर्माण के दौरान क़ैदियों को वाइपर द्वीप में रखा जाता था। वाइपर द्वीप जाने के लिए हम वॉटर स्पोर्टस कॉम्प्लेक्स में ही बने फोनिक्स बे जेट्टी पर आए। वेंकटेश विदा ले चुका था। अपना चार्ज अनुराधा को सौंप कर। दुबली-पतली फुर्तीली अनुराधा गाइड जहाज पर बैठे यात्रियों का परिचय स्वयं ही पूछ रही थी। मौसम खुशगवार लेकिन सागर बौखलाया हुआ था। लहरें ऊँची-ऊँची मानो लपक कर जहाज में बैठे मुसाफिरों को छूना चाह रही हों। हम खुली डेक पर आ गए। धूप ऐन सर पर थी। जब अंग्रेज़ इन सुनसान,घने,गहरे जंगलों से भरे और चारों ओर हहराते सागर के शोर से डरावना एहसास कराते द्वीपों पर क़ैदियों की बस्ती बसाने आए थे तो सबसे पहले उन्होंने चाथम द्वीप पर कब्जा जमाया था। लेकिन पानी की कमी के कारण पच्चीस-पच्चीस की संख्या में क़ैदियों को वाइपर द्वीप भेजा गया जहाँ पहले ही दिन क़ैदी नंबर 46 ने आत्महत्या कर ली।

वतन की याद में तड़पते कई भूखे-प्यासे क़ैदी सागर में कूद पड़े पर उनमें से एक भी तट तक नहीं पहुँच पाया उन्हें या तो भूख प्यास ने मार डाला या आदिवासियों के ज़हर बुझे तीरों ने। 8 अक्टूबर 1858 को भारत से क़ैदियों के चार दल जिस जहाज पर इस द्वीप में भेजे गए थे उस जहाज का नाम वाइपर था। उसी के नाम पर इस द्वीप का नाम वाइपर रखा गया। वाइपर में पश्चिमी क्षेत्र का मुख्यालय था। अंडमान की इस पहली जेल में सज़ा के दौरान क़ैदियों ने अंग्रेज़ो के रहने के लिए सुंदर भवन और सड़कों का निर्माण किया था। मीठे पानी से भरे तीन गहरे कुएँ खोदे थे। यहाँ ख़तरनाक माने जाने वाले क़ैदियों को बेड़ियों में जकड़ कर रखा जाता था। सेल्यूलर जेल बनने के बाद भी अंडमान आने वाले हर क़ैदी को

चेन से बाँधकर पहले वाइपर द्वीप लाया जाता था ताकि खूँखार क़ैदियों को दी जाने वाली रूह थर्रा देने वाली यातनाएँ देखकर वह भयभीत हो जाए। उनसे जो काम कराए जाते थे वह भी सज़ा जैसे ही पीड़ादायक थे। उनके औज़ार भोथरे थे ताकि वह किसी पर हमला न कर सके।

जहाज़ वाइपर द्वीप की जेट्टी पर लग चुका था। भारी मन से हम वाइपर द्वीप में प्रवेश कर रहे थे। स्वतंत्रता सेनानी ननी गोपाल, नंदलाल और पुलिन दास को भावभीनी श्रद्धांजलि देते हुए, जिन्हें यहाँ बंदी बनाकर रखा गया था। ऊँचे-ऊँचे घने दरख़्तों से भरपूर यह छोटा सा द्वीप मूक साक्षी था उन दिनों का। लाल और सफेद रंग से पुते साफ-सुथरे वीरान उन चार कमरों के आगे बरामदे में खड़ी अनुराधा धाराप्रवाह बोल रही थी।

'इन कमरों में मृत्यु की सज़ा प्राप्त क़ैदी को लाया जाता था। फाँसी से 1 दिन पूर्व यहाँ उन्हें भोजन कराया जाता था। दूसरे दिन उन्हें दूसरे कमरे में ले जाकर बताया जाता था कि उन्हें फाँसी क्यों दी जा रही है। फाँसी पहाड़ी के ऊपर बने कमरे में दी जाती थी जहाँ की 80 सीढ़ियों को क़ैदी खुद चढ़ता था। रात को 7 और 8 के बीच फाँसी दी जाती थी। अधिकतर कैदी फाँसी पर लटकने के बाद जल्दी नहीं मरते थे लेकिन अंग्रेज़ों के पास इतना समय कहाँ था। वे मूर्छित अवस्था में ही कैदी का पोस्टमार्टम कर लाश को बोरी में भरकर समुद्र में फेंक देते थे।'

उन चारों कमरों को देखने के बाद अब मैं फाँसी घर देखने के लिए 80 सीढ़ियों को चढ़ रही थी। तो सर से पैर तक एक उबाल मेरे शरीर में तिर रहा था। न, यह भावना का ज़ोर नहीं था। यह उन जीवित कटते शहीदों के लिए सुलगता दावानल था जिसने मेरी रूह को कँपा डाला था। फाँसी घर में फाँसी के लिए लटकते मोटे रस्से को देख अनुराधा ने अथाह पीड़ा में भरकर कहा 'यहाँ शेर अली को फाँसी दी गई थी।'

मैंने इतिहास में एम ए किया है और जब भी मैं नारी विमर्श पर लेख लिखती हूँ इतिहास के उन पन्नों से कुलबुला कर शेर अली बाहर निकल आता है। कौन है यह शेर अली ? शेर अली पेशावर का था। वहाँ उसने अंग्रेज़ ऑफिसर ब्रिगेडियर ऑस्कर की हत्या की थी इसलिए उसे काले पानी की सज़ा हुई परंतु उसके अच्छे व्यवहार के कारण उसे जेल का नाई बना दिया गया। उसी दौरान लॉर्ड मेयो ने जेल की महिला क़ैदी के साथ बलात्कार किया। यह तो जेल का चलन था। अंग्रेज़ अपने मनोरंजन के लिए किसी भी महिला क़ैदी को उठा लेते थे। शेर अली के बर्दाश्त से बाहर की थी यह वारदात। उसने अपने उस्तरे से अपनी बेड़ियाँ काटी और समुद्र में छलाँग लगा दी। वह तैरता हुआ होपटाउन पहुँचा जहाँ लॉर्ड मेयो एक दिन की छुट्टी मनाने रुका था। उसने उस्तरे से उसकी हत्या कर दी और अंग्रेज़ सरकार के सामने समर्पण कर दिया। लेकिन इसके पहले उसने पुरुष क़ैदियों को राज़ी कर लिया था कि वह महिला क़ैदियों से जेल में ही शादी कर लें ताकि बलात्कार की घटनाएँ दोहराई न जा सकें। 1872 में वाइपर द्वीप के इसी फाँसी घर में शेर अली को फाँसी दे दी गई थी।

कितनी जीवट दृढ़ता थी शेर अली में। उसने औरत के ऊपर किए अत्याचार का बदला लिया। अंतरजातीय विवाह परंपरा की शुरुआत का श्रेय भी उसे ही जाता है। मेरा माथा श्रद्धा से झुक गया शेर अली की याद में। जब सेल्यूलर जेल बन गया तो वाइपर से सारे क़ैदी वहाँ शिफ्ट हो गए। वाइपर खाली हो गया। 87 वर्षों तक वाइपर द्वीप की अंग्रेज़ प्रशासन में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। 1 मार्च 1942 से जब अंडमान निकोबार पर जापानी कब्ज़ा हुआ तो वे वाइपर पर ही ठहरे थे। जापानियों ने 3:30 साल तक यहाँ राज किया। बाद में यहाँ फिर अंग्रेज़ों की सत्ता थी। शासन चाहे जिस का रहा हो पर वाइपर द्वीप के ये खंडहर मूक साक्षी हैं कि समय किसी का एक सा नहीं रहता। प्रकृति भी तो

हर मौसम में, हर ऋतु में अपना रूप बदलती है। समय के थपेड़ों ने अंग्रेज़ी शानो-शौकत को आज खंडहर में बदल दिया है। मैं भारी मन से लौट रही हूँ।

सुबह हमें रॉस द्वीप के लिए निकलना था। पर हमारी वैन के ड्राइवर राजा ने बताया कि रॉस द्वीप के लिए जहाज 1:00 बजे छूटेगा। बहराल 8:00 बजे सुबह हम मिनी जू की ओर रवाना हुए। अंडमान निकोबार में पाए जाने वाले सभी पक्षी और जानवर वहाँ मौजूद थे। मुझे तो हीरामन तोता बहुत पसंद आया जो चार रंगों का था। वहाँ से समुद्रीका म्यूज़ियम गए जो नेवी के अंदर आता है और जहाँ समुद्र से संबंधित सारी जानकारी है। अलग-अलग विभागों में बँटे इस म्यूज़ियम की सैर करते हुए जब मैं ए एंड एन द्वीप, शेल्स, कोरल्स ओशन और आर्कियॉलॉजी विभाग से गुज़रती हूँ तो लगता है जैसे मैं पातालपरी हूँ और सागर के अद्भुत आकर्षक और अविश्वसनीय लोक में विहार कर रही हूँ। अपने बराबर आकार की सीपी देख तो मैं चकित रह गई। म्यूज़ियम के लॉन में बीचों बीच बड़ा सा नेवी का जहाज था। जिस पर नेवी का झंडा लहरा रहा था। लचीली धूप पर गौरैया फ़ुदक रही थी। पूरे अंडमान में यही एक ऐसी जगह थी जहाँ के स्टॉल पर आदिवासियों की तस्वीरें, सी डी आदि आसानी से उपलब्ध हैं।

यूँ तो अंडमान में बारिश होती रहती है पर इत्तफाक देखिए कि मेरे प्रवास के उन दस दिनों में केवल दो दिन हल्के छींटे पड़े। आज भी बादल लदे थे। ठंडी हवाएँ चल रही थी। मौसम खुशगवार था। ठीक 1:00 बजे फोनेक्स बे जेट्टी से रॉस द्वीप के लिए जहाज़ छूटा। अनुराधा फिर मिली .....हम तीनों डेक पर खड़े समुद्र के नीले विस्तार को भर आँख देखते रहे। करीब 40-45 मिनट की समुद्री यात्रा के बाद रॉस द्वीप पहुँचे जो 200 एकड़ भूमि का बेहद खूबसूरत द्वीप था लेकिन अब केवल 70 एकड़ भूमि ही बची है। बाकी की 130 एकड़ भूमि पानी में डूब चुकी है क्योंकि जापानियों ने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान इस पर बमबारी की थी। नारियल, सुपारी, पीपल, बरगद आदि के सघन दरख़्तों से भरे इस द्वीप पर

चीतल, हिरन आदि जानवर हैं। अनुराधा हिरणों को नाम ले लेकर बुलाने लगी। झाड़ियों में छिपे हिरण सरपट दौड़ते आए। वह कंधे से लटकते बैग में से डबल रोटी निकाल कर उन्हें खिलाने लगी। वह उन्हें बच्चे जैसा प्यार कर रही थी। उसने बताया कि इन जंगलों में लगभग 200 मोर भी हैं।

1759 में इस ग्रुप इस टापू को बसाया गया था। ईंटे रंगून, बर्मा, थाईलैंड से लाई गईं। 1825 में यह अंडमान की राजधानी था। सारी अंग्रेज़ सरकार यहीं रहती थी। उस जमाने में यहाँ की आबादी 2200 थी जिसमें 165 अंग्रेज़ थे। बाकी भारतीय बंधुआ मज़दूर। अंग्रेज़ों ने अपने लिए इन मज़दूरों से बँगले, बार रूम, डांसिंग फ्लोर, ओपन स्टेज जहाँ हँसी-मजाक, शराब आदि का दौर चलता था, गार्ड रूम आदि बनवाए। 1740 में यहाँ एक चर्च बना जो पाँच मंज़िलों का था। अब सब खंडहर हो चुका है। उखड़े पलस्तर और उखड़ी ईंटों पर पीपल, बरगद की मोटी मोटी सर्पीली जड़ें चिपकी हैं। बेकरी भी खंडहर हो चुकी है जिसके विशाल घेरे में ब्रेड, बिस्किट का आटा गूँथा जाता था। खूब बड़ा टेनिस कोर्ट है जिसके किनारे पर समुद्र की लहरें टकरातीं हैं। बेकरी के दाहिनी ओर थोड़ी चढ़ाई पर खतरनाक क़ैदियों की जेल कोठरियाँ हैं। इन्हीं में से एक कोठरी में शेर अली को लाया गया था। जेल कोठरियों से आगे 250 फीट ऊँचा पॉइंट है जहाँ से समुद्र बेहद खूबसूरत दिखता है। उसके पीछे क़ैदियों को सज़ा दी जाती थी।

अनुराधा हमें जंगल में बने जापानियों के बैरक दिखाने ले गई। रास्ते में अंग्रेज़ों की सिमिट्री पड़ी। कितने ताज्जुब की बात है कि बंगले आदि सब खंडहर हो चुके हैं लेकिन सिमिट्री वैसी की वैसी, सूखे पत्तों से घिरी ज़िंदगी के भयानक सच का बयान करती। बैरक देख कर लौट रहे थे तो सूखे पत्तों में छुपी सीढ़ियाँ दिखाई दी।

'ये सीढ़ियाँ ?'

'नीचे मीठे पानी की पौंड है। ऐसी कई पौंड है इस द्वीप में। अंग्रेज़ इसके पानी में नहाते थे। कपड़े धोते थे। जबकि भारतीयों को नहाने के लिए समुद्र का पानी दिया जाता था। कदम-कदम पर अंग्रेज़ों के जुल्म बिछे थे। एक बरगद 500 साल पुराना मिला। जिस पर पीपल का झाड़ चढ़ गया था और डालियों पर पैसाइड फर्न निकल आया था। अद्भुत दरख़्त था वह। नीचे ढलान पर तट से थोड़े फ़ासले पर नौ सेना द्वारा स्थापित स्मृतिका संग्रहालय है जहाँ रॉस द्वीप पर अंग्रेज़ों की जीवन शैली फोटो, पेंटिंग्स आदि के द्वारा दर्शाई गई है।

थक चुके थे। एक जगह हरे नारियल बिकते देख हम कुर्सियों पर बैठ गए अचानक सामने असगर वज़ाहत जी दिखे। वे अकेले बैठे नारियल पी रहे थे। मैं उन्हीं के पास जाकर बैठ गई।

' कहाँ ठहरी हो?, फोन नंबर वगैरह दे दो। गुरुवार को यहाँ के लेखक गोष्ठी कर रहे हैं। आ जाना।' तभी गौतम बोल पड़ा 'मैडम तब तो आप हैवलॉक द्वीप में होंगी'

अरे हाँ मन ही मन खुश हूँ कि एक दिन गोष्ठी बाज़ी से बचाकर मैं इन द्वीपों को देखूँगी, समझूँगी।

लौटते हुए एक बारह-तेरह साल की लड़की अपनी नोट बुक लेकर मेरे पास आई 'आंटी बताएँगी इस द्वीप का नाम रॉस द्वीप कैसे पड़ा?' मैं मुस्कुराई 'इस द्वीप को अंग्रेज़ ऑफिसर डेनियल रॉस ने बनाने की योजना बनाई थी इसीलिए इसका नाम रॉस द्वीप पड़ा।'

असगर वज़ाहत पैदल थे हमने उन्हें अपनी वैन से एबरडीन मार्केट तक छोड़ दिया। राजा हमें एंथ्रोपोलॉजीकल म्यूज़ियम ले आया। इस म्यूज़ियम में अंडमान निकोबार द्वीप समूह में रहने वाली जनजातियों के जीवन का विस्तृत वर्णन तस्वीरों, पेंटिंग्स, मॉडल्स आदि के द्वारा बताया गया है। न जाने कब इन्हें प्रत्यक्ष देख पाऊँगी, मिल पाऊँगी बेताब थी मैं।

'चलिए मैडम, लगे हाथ फिशरीज

म्यूज़ियम भी देख लेते हैं। अभी खुला मिलेगा।'

महेंद्र ने जल्दबाज़ी में मेरा हाथ पकड़ा और बाहर वह तक दौड़ा लाया। पीछे-पीछे गौतम और प्रमिला बेतहाशा हँसते चले आ रहे थे। धूप खिल आई थी। समुद्री जीवों का विशाल संग्रहालय है यह म्यूज़ियम। कई प्रकार की मछलियाँ अद्‌भुत रंग, आकार..... सुंदर कोरल्स, शंख सीपियाँ और उफ़..... फर्श पर इस छोर से उस छोर तक रखा विशाल व्हेल का अस्थि पंजर। उसके आगे हम बौने से। गुलीवर की कल्पना क्या व्हेल को देखकर ही की थी लेखक ने? राजा ने बताया कि सूर्यास्त देखने मुंडा पर्वत जाना है। जलती धूप देख हम तेजी से वेन में बैठ गए। इस वक्त आसमान एकदम साफ था। रास्ते में चिड़िया टापू भी देखा। यह एक अनोखा पर्यटक स्थल है। जहाँ मैंग्रोव की झाड़ियाँ तट को घेरे हैं। मैंग्रोव की जड़ें ऊपर की ओर होती हैं और पेड़ के लिए आक्सीजन लेती हैं। ऐसी झाड़ियाँ मैंने मॉरीशस में भी देखी थे। मुंबई में भी हैं वसई की खाड़ी के किनारे। मंदार पर्वत द्वीप में चमकते हुए सूरज को पहली बार अस्त होते देखा। सागर का पानी सूरज की किरणों से झिलमिला रहा था। न वह नारंगी हुआ न सतरंगी। चमकता सूरज मुंडा की पहाड़ियों के पीछे छुप गया और तुरंत सुरमई अँधेरा फैल गया अद्‌भुत रोमांचक जैसे चाँदी की माया में खो गया हो सूरज।

जब हम गाँधी पार्क आए तो अँधेरा हो चुका था। गाँधीजी की सफेद पेंट की हुई विशाल प्रतिमा जो बैठे हुए, किताब पढ़ते हुए थी सर्च लाइट की रोशनी में नहाई हुई थी। आगे जापानियों का पगोडा टाइप सूर्य मंदिर था। पगोडा के अंदर सफेद स्तंभ पर लगे काले पत्थर पर सुनहरे अक्षरों में जापानी भाषा में कुछ लिखा था। उसी के सामने एक नुकीली चट्टान .....क्योंकि जापानियों ने इस द्वीप के विकास के लिए करोड़ों का दान दिया था। अत: यह उनकी स्मृति में लगाई गई थी।

आज बुधवार है। मुझे असगर वज़ाहत याद आए पर मन तो हैवलॉक द्वीप में रखा था। हैवलॉक के लिए जहाज सुबह 7:00

बजे छूटा। 3:30 घंटे के समुद्री सफ़र के बाद जब जहाज हैवलॉक जेट्टी पर लगा तो जयंतो हमारे नाम का छोटा सा पोस्टर लिए खड़ा दिखा। राजा और वेन पोर्ट ब्लेयर में रह गए थे। यहाँ जयंतो और उसकी जीप थी। 10 मिनट में हम डॉल्फिन यात्री निवास पहुँच गए। प्रकृति की गोद में बसे इस खूबसूरत रिसोर्ट में सफेद और नीले पेंट वाली दो-दो कमरों की हट हैं जिनमें रहना मानो परीलोक की सैर करना है। क्योंकि हट चार खंभों का आधार लेकर बनी है और उस की बालकनी में पड़ी कुर्सियों पर जब मैं बैठी तो सामने पाँच रंगों का मोहक सागर था। चारों ओर नारियल आदि के दरख़्त और लॉन में धूप और सफेद रेत। सफेद रेत पर नेट के झूले। यहाँ के लिए एक दिन तो बहुत कम है। दोपहर ढल चुकी थी। जयंतो हमें यहाँ से 10 किलोमीटर दूर राधानगर बीच में ले आया जो जंगल के एकांत में हमारे साहस को चुनौती देता सा लगा। श्वेत रेत और अथाह सौंदर्य से भरे सागर के किनारे, घने जंगल से घिरा ये द्वीप शांति और सन्नाटे से भरा था। पेड़ों की सघनता से जंगल में अँधेरा था लेकिन डरावना नहीं, सुरमई .....वहीं एक मचान था जहाँ से हाथी पर बैठकर जंगल में घूमा जा सकता था। हलचल थी पर शांत .....द्वीप के अनुरूप ही। कुछ बीच पर नहा रहे थे, कुछ हाथी की सवारी ले रहे थे। विदेशी पर्यटक श्वेत रेत पर लेटे थे। सभी अपने में डूबे हुए। एक अजब सी उदासी ने मुझे घेर लिया। डूबते सूरज के बनते बिगड़ते दृश्यों ने उदासी को और गहरा कर दिया था।

रात डिनर के दौरान गौतम और महेंद्र यहाँ के सूर्योदय की तारीफ करने लगे।

'यह जगह सनराइज पॉइंट के नाम से मशहूर है। आप मैडम रिसेप्शन में कह दें कि वह सूर्योदय के समय आपको वेकअप कॉल दे दे।' लेकिन मेरी नींद 4:30 बजे सुबह ही खुल गई 4.40 पर सूर्य की पहली किरण इस द्वीप को छूती है। मुंबई में तो 6:00 बजे सूरज निकलता है। हम सब समंदर में तट से लगे रिसोर्ट की दीवार पर बैठे सूरज निकलने का इंतजार करते रहे पर बादलों के कारण सूरज नहीं दिखा। मैं उदास मन झूले पर आकर लेट गई। चारों ओर से समुद्री हवाएँ मुझे छू रही थी। ऊपर पेड़ों की डालियाँ पत्तों का चंदोवा सा ताने थी। मैंने आँखें मूँद ली। तभी प्रमिला चिल्लाई 'अरे देखो कितना प्यारा सूरज' मैंने देखा किरण विहीन ठंडा सा, शांत सा सूरज काफी ऊपर आसमान में उगा था। नाश्ते के बाद जयंतो ने मेरा बैग जीप में रख दिया। मैंने जी भर कर समंदर और आसपास के सौंदर्य को निहारा। अलविदा जीवन में अब दुबारा कहाँ आ पाऊँगी यहाँ।

हैवलॉक जेट्टी पे संजय जो जयंतो का दोस्त था ने टिकट लाकर दी। हमें रंगत द्वीप जाना था। जहाज़ में बेतहाशा भीड़ थी। शोर इतना कि कान फ़टे जा रहे थे। टीवी, टेपरिकार्डर सब एक साथ बज रहे थे। जैसे तैसे सफ़र कटा। रंगत में हम पियरलेस होटल में रुके। अब राजा साथ था। वह रंगत में वैन लेकर आ गया था। बताया कि रंगत अंडमान का सबसे बड़ा शहर है। यहाँ के सागर तटों पर मौसम आने पर कछुए अंडे देते हैं।

दोपहर 3:30 बजे हम अमकुंज बीच आए। बीच के मोड़ पर लिखा था 'बीच की रक्षा के लिए मेंग्रोव्ज़ को बचाइए।' बीच क्या था मानों कोरल्स का खुला खज़ाना। इतने खूबसूरत कोरल पूरे तट पर बिखरे पड़े थे। हम जल्दी-जल्दी कोरल्स इकट्ठे करने लगे। तभी एक बंगाली दंपति ने बताया कि यहाँ से कोरल ले जाना गुनाह है। एयरपोर्ट पर चेकिंग के दौरान 5000 तक का जुर्माना देना पड़ता है और क़ैद होती है। केवल वही कोरल ले जा सकते हैं जिनके पास दुकान से खरीदे हुए कोरल्स का बिल होता है। यह एक नई जानकारी थी। लेकिन कोरल्स का मोह छूटता नहीं था। कोरल्स तट पर सज़ा कर हमने फ़ोटो ली। समुद्र की लहरें बढ़ती जा रही थीं जैसे शुक्ल पक्ष के ज्वार में बढ़ती हैं। कृष्ण पक्ष में इतनी उत्ताल तरंगे

पहली बार देखी। एक शरारती लहर ने आकर मेरे जूते भीतर तक भिगो दिए। अँधेरा होने तक हम टूटे हुए पेड़ की डाल पर बैठे रहे। बाजू में ही केवड़े और मैंग्रोव के झुरमुट थे। गौतम ने एक सूखा हुआ केवड़ा तोड़कर मुझे सुँघाया। खुशबूदार था। अमकुंज से आगे पंचवटी है। जहाँ पंचवटी पहाड़ी से उतरता मीठे पानी का मनोरम झरना यह एहसास ही नहीं होने देता कि उसके चारों ओर खारे पानी का सागर है। पत्थरों से पिघलते चाँदी जैसे झरने की मधुर झर-झर में मन खो सा गया।

वापसी में काली मंदिर देखने गए। वहाँ दो अजूबे हुए..... एक तो काली मंदिर अँधेरे में डूबा हुआ था। हमारे प्रवेश करते ही बत्तियाँ जगमगा उठीं। दूसरे उसकी तीस पैंतीस खड़ी सीढ़ियाँ मैं एक ही साँस में चढ़ गई और इससे भी बड़ा अजूबा था कि काली माँ की आदम कद मूर्ति फूल मालाओं से ढँकी-सी थी पर न कहीं फूल वाला था, न पंडित,न भोग का प्रसाद और न ही भिखारी।

डिनर के दौरान गौतम ने बताया 'मैडम सुबह 6:00 बजे बाराटाँग द्वीप के लिए रवाना हो जाना है। आपके विशेष अनुरोध पर आदिवासियों के इलाके में जाने के लिए आदिवासियों के विशेषज्ञ वर्मा जी, मानव विज्ञानी अय्यर जी और पुरातत्त्वविद् डाक्टर डेनियल रात में किसी वक्त यहाँ पहुँच जाएँगे। यह मेरे लिए रोमांचक सफ़र था क्योंकि मैं उन आदिम जनजातियों को देखना चाहती थी, जो आज भी इन द्वीपों के जंगलों में पाषाण कालीन सभ्यता को जीवित रखे हैं। उनके आने तक हम जागते रहे। महेंद्र तरह-तरह के क़िस्से सुना कर हमें जगाता रहा। रात लगभग 1:30 बजे वे आए। थकान से चूर .....परिचय की अदायगी के बाद हमने साथ बैठकर कॉफ़ी पी फिर बची-खुची रात में अपने अपने कमरों में दुबक गए।

भोर का अंतिम तारा भी अस्त हो चुका था। अचानक ठंडी हवाएँ चलने लगीं। दिसंबर में तो खूब जाड़ा पड़ता है पर यहाँ मानों बसन्त का साम्राज्य था। सबसे पहले पुलिस आउट पोस्ट पोर्लोब्जिक नंबर 15 कदमतल, मिडिल अंडमान में हमारी वैन रुकी जहाँ पुलिस चैकिंग होती है। यहीं से जारवा

आदिवासियों का क्षेत्र शुरू होता है। अंडमान निकोबार में अब छै जनजातियाँ ही निवास करती हैं

जारवा, सेंटिनल, ग्रेट अंडमानी,ओगी, कार निकोबारी और शोंपेन। यह सभी आदिवासी आधुनिक सभ्यता से दूर एकांत निर्जन सागर तटों के नज़दीक घने जंगलों में निवास करते हैं। चट्टान जैसे काले, पीली सफेद आँखों वाले ये आदिवासी लगभग नग्न.... जंगल और समुद्र से अपनी खाद्य आवश्यकताएँ पूरी करते हैं। जारवा आदिवासी तो आज भी ज़हर बुझे नुकीले तीर रखते हैं और देखते ही हमला कर देते हैं। सरकार ने उनके लिए अलग से अस्पताल भी बनवाया है। इनकी घटती आबादी सरकार की चिंता का कारण है।

रास्ते में बालूडेरा बीच देखकर मैंने जब तमाम सागर तटों को याद किया तो पाया कि अब तक जितने भी बीच मैंने देखे हैं किसी में भी समानता नहीं है। सब अलग-अलग तरह के दृश्यों से भरे। बालू डेरा का इलाका दलदली था। अत: पेड़ की डालियों का पुल बीच तक पहुँचने के लिए बनाया गया था। निर्जन शांत सागर तट अपने एकाकी रूप में भी सौंदर्य बिखेरने में जुटा था। फेनिल लहरों की झालर जब तट से टकराती तो लगता चाँदनी के सफेद फूल बिखर गए हैं।

हम वैन सहित गाँधी जेट्टी से जहाज़ में बैठकर उत्तरा जेट्टी आ गए। इसका नाम अब बाराटाँग जेट्टी है। बाराटाँग जेट्टी से एक छोटी सी खुली नाव लेकर हम प्रकृति के अद्भुत करिश्मे लाइम स्टोन केव्ज़ के लिए चल पड़े। धूप ऐन सिर पर थी। सागर में उमस..... फिर भी हवाएँ ठंडी। हमने अपने-अपने छाते खोल लिए पर हवा में छाते को सँभालना मुश्किल हो रहा था। नाव जब सागर के बीचों-बीच आई तो मैंग्रोव के झुरमुट शुरू हो गए। उनकी जड़ों के जाल ने सागर को दो भागों में बाँट दिया था। नाव बीच में जड़ों से बार बार टकराती चल रही थी। रोमांचक रास्ता..... केवट घुटने-घुटने पानी में उतरकर नाव का संतुलन सँभाल रहा था। किनारा दलदली था। किनारे से थोड़ी ऊँचाई पर डालियाँ बिछा कर रास्ता बनाया गया था। इस हिलते और लचीले रास्ते पर चलना जोखिम भरा था। ज़रा-सा पैर फिसला की डालियों के बीच से सीधे दलदल में। दलदली इलाका ख़त्म होते ही पुल भी ख़त्म हो गया। वहीं से एक वन कर्मी गुफ़ा तक ले जाने के लिए हमारे साथ हो लिया। लगभग 20 मिनट का पैदल ऊँचा-नीचा रास्ता,सघन दरख़्तों ने आपस में मिलकर सूरज की रोशनी को छेक रखा था। नीचे सूखे पत्ते पैरों तले चरमरा रहे थे। घने पत्तों से कभी मेगापोड चिड़िया प्रगट होती तो कभी हार्नबिल, नील, मैना, गलगल और गौरैया। कितना रोमांचकारी रास्ता था। मुझे लगा जैसे मैं हॉलीवुड की फ़िल्म की शूटिंग पर आई हूँ कि तभी वनकर्मी रुक गया। सामने गुफा के अंदर प्रवेश करते ही जैसे खज़ाना खुल गया हो। सामने तेज़ सर्च लाइट की रोशनी में नुकीली कैल्शियम कार्बोनेट का ठोस शिल्प। कलकत्ते से आए विद्यार्थी विद्युत सेन जो कि पिछले 3 महीने से इन गुफाओं का अध्ययन कर रहा है और अंडमान प्रशासन द्वारा बतौर गाइड नियुक्त किया गया है ने बताया कि इन गुफाओं की संख्या 70 है लेकिन टूरिस्ट के लिए बस यही एक गुफा खुली है। 2 साल से पर्यटक यहाँ आ रहे हैं पहले आप देखें कि सर्च लाइट ऑफ करने पर यहाँ कितना अंधेरा है। सर्च लाइट ऑफ होते ही जैसे मैं अंधेरे के भयावह गर्त में डूब गई। हाथ को हाथ सुझाई नहीं दे रहा था। सर्च लाइट जलते ही विद्युत आगे-आगे।

'धीरे-धीरे चलिए मैडम,रास्ता फिसलन भरा है। और दीवार को ज़रा भी टच न करें। रिक्वेस्ट है मेरी। कैल्शियम के पैरेंट्स रॉक्स है इसके अंदर। इसके ऊपर मिट्टी पेड़ पौधे हर्ब शर्ब हैं .....यानी जंगल। कैल्शियम को लेकर पानी नीचे की ओर बहता है। कैल्शियम इकठ्ठा होता जाता है। पानी बहता रहता है। बूँद-बूँद और उन बूँदों के ठोस होने की

प्रक्रिया चलती रहती है। जो ऊपर झाड़ फानूस जैसी चट्टानें लटकी हैं उन्हें रूफ पेडेट्स कहते हैं। मुझे लगा नुकीले शिखरों वाला पर्वत किसी ने औंधा लटका दिया है।

बाराटाँग जेट्टी से जहाज़ लेकर मिडिल स्ट्रेट आए। यहाँ से डिगलीपुर तक की 290 किलोमीटर की दूरी जारवा आरक्षित क्षेत्र घोषित की गई है। लगभग डेढ़ घंटे का आदिवासी इलाका हम तगड़ी सुरक्षा व्यवस्था में पार कर रहे थे। सड़क के दोनों ओर हजारों साल पहले का वन्य जीवन..... आदिम सभ्यता को जीवंत किए .....जंगलों से अचानक प्रकट हुए जारवा .....कोलतार जैसे काले जिस्म पर लाल पीली मिट्टी से धारियाँ चित्रित किए। कमर से नीचे जंगली फूलों की माला, पत्ते..... राजा ने स्पीड थोड़ी कम कर दी थी। वह वैन की खिड़की तक आकर झाँक-झाँक कर देखने लगे। वैसे अंडमान प्रशासन ने खाने की चीज़ें देने पर पाबंदी लगाई है फिर भी पर्यटक अपने मनोरंजन के लिए नमकीन मिठाई आदि से भरे पैकेट्स इन की ओर फेंकते हैं। और उन्हें उन पर झपट्टा देख कर हँसते हैं। अब इन्हें भी पता हो गया है। जैसे ही कतार में वाहन गुज़रते हैं यह झुंड-के-झुंड सड़क पर निकल आते हैं।

आदिवासी इलाका खत्म होते ही वैन ने तेज़ी पकड़ ली। जब हम पोर्टब्लेयर पहुँचे शाम हो चुकी थी। सुस्ताने के लिए मरीना पार्क में थोड़ी देर बैठे। वहाँ टैगोर और बोस की प्रतिमाएँ हैं। बच्चों का ट्रैफिक जहाँ उन्हें सड़क पर वाहन चलाने की जानकारी दी जाती है। मिलेनियम क्लॉक जो पौधों से बनी है पर काँटा चलता है। बाजू में एक झरना भी है। यहाँ हमने डेनियल, वर्मा जी और अय्यर से विदा ली। गौतम भी ज़रूरी काम से कहीं चला गया था। 9 दिसंबर की सुबह बादलों से भरा था आकाश। हल्के छींटों ने रास्ते भिगो दिए थे। चौथम सॉ मिल की ओर हमारी वैन भागी चली जा रही थी। यही एक ऐसा द्वीप है जिसे पोर्ट ब्लेयर से जोड़ने के लिए समुद्र पर पुल बनाया गया है। अंदर लकड़ी के सामान का छोटा सा शोरूम था। सीढ़ियों से चढ़कर हम ऊपर गए जहाँ लकड़ियों को छीलने काटने की

मशीनें लगी थी। बहुत विशाल मिल में ढेरों लकड़ियाँ। इस द्वीप पर बारह-तेरह प्रकार के इमारती लकड़ी के पेड़ हैं। शोरूम में इन लकड़ियों के खूबसूरत फर्नीचर रखे हैं। ऑर्डर करने पर भारत की किसी भी शहर में 15 दिन में फर्नीचर पहुँच जाता है। इसी द्वीप पर जापानियों ने बम गिराया था। और अंग्रेज़ो को हराकर यहाँ राज किया था।

अब वह बहु प्रतीक्षित समय आ गया था जब हम कोरल द्वीप नॉर्थ बे जा रहे थे। वैसे जॉली बाय और रेड स्किन द्वीप भी कोरल के लिए प्रसिद्ध हैं। फोनेक्स बे जेट्टी से 20 मिनट में जहाज द्वारा नार्थ बे पहुँच गए। वहाँ से जहाज़ द्वारा एक ग्लास बोट में उतरकर तट पर आए। अद्‌भुत सौंदर्य से भरा था यह द्वीप। गाइड हमें स्नोर्कलिंग के द्वारा कोरल दर्शन कराने को उतावला था। मैं डर रही थी क्योंकि मुझे तैरना नहीं आता था और कोरल पानी के अंदर जाकर देखने थे पर स्नोर्कलिंग में तैरने की ज़रूरत नहीं। गाइड के साथ मैंने दूर तक समुद्र के अंदर जाकर कोरल देखे। अद्‌भुत मूँगे की चट्टानें सागर तल में सुंदर फूल जैसी दिखती हैं। मूँगा समुद्री जीव है जो मिलकर एक कॉलोनी सी बना लेते हैं। ये कोलनियाँ ही कोरल में बदल जाती हैं।

कोरल्स के बीच से गुज़रती रंग-बिरंगी मछलियाँ, शंख, गुफाएँ,पहाड़ियाँ .....छोटी-छोटी मछलियों के गुच्छे..... एक पूरा का पूरा समुद्री संसार। विचित्र अनुभव से भरी मैं तट पर लौटी। कपड़े बदन पर सूखते रहे और मैं धूप स्नान करती रही। श्वेत रेत वाला साफ सुथरा तट..... कहीं कोई कचरा नहीं। इधर उधर बिखरे थे शंख, सीपियाँ। मुझे धर्मयुग में अपनी पहली प्रकाशित कहानी शंख और सीपियाँ का शीर्षक याद आया। एक रेंगता हुआ केंकड़ा मेरे पैरों के बिल्कुल नज़दीक से गुज़रा।

जब हम पोर्टब्लेयर लौटे तो गौतम और महेंद्र तरोताज़ा मुस्कुराते खड़े थे।

' मैडम सिंक आयलैंड नहीं गईं ? वहाँ समुद्र दो भागों में बँटा है। उसके तल में अनूठे कोरल उद्यान हैं जिसकी वजह से वह कोरल अभयारण्य कहलाता है।'

'वहाँ जाते तो यूनिवर्सिटी रह जाती न' मैंने जल्दी-जल्दी वेन की ओर कदम बढ़ाया। जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी और इंदिरा गाँधी ओपन यूनिवर्सिटी एक ही कॉम्प्लेक्स में है। वही डॉ व्यास मणि त्रिपाठी हिंदी के प्रोफेसर हैं। वह हिंदी कला परिषद् द्वारा प्रकाशित की जाने वाली हिंदी साहित्य की त्रैमासिक पत्रिका द्वीप लहरी के संपादक भी हैं पर उनसे मुलाकात न हो सकी। वे छुट्टी पर थे। यूनिवर्सिटी घूमकर और पुस्तकालय में आधा घंटा बिताकर हम कॉर्बिसकीव आ गए। नारियल के वृक्षों से घिरा श्वेत रेत वाला समुद्र तट पोर्ट ब्लेयर का लोकल बीच कहलाता है। वहाँ से आधा किलो मीटर दूर लंबी-लंबी लेटी हुई चट्टाने हैं, जिनसे ठाठे मारता समुद्र जब टकराता है तो उसकी दूधिया और फिरोजी आभा देखते ही बनती है। वहाँ से वीर सावरकर पार्क होते हुए होटल लौट आए।

रात थक कर चूर बिस्तर में दुबकते हुए मैं सोच रही थी यह रात पोर्ट ब्लेयर की अंतिम रात है। 9:00 बजे चेन्नई के लिए फ्लाइट लेनी है और मन है कि इन द्वीपों में ही रमा है। जहाँ के सागर तटों को छूती हर बूँद में एक समंदर है। न जाने कितने समंदरों का गवाह बस एक सागर।

❑❑❑

सी-1/1, स्नेह नगर, शासकीय आवास,
शासकीय इंजीनियरिंग कॉलेज के सामने,
औरंगाबाद, 431 5, महाराष्ट्र
मोबाइल 9769023188

समीक्षा

# कथा में इतिहास की प्रामाणिकता

**महेश दर्पण**

पुस्तक: डेक पर अँधेरा (उपन्यास); लेखक: हीरालाल नागर; प्रकाशक: किताबघर प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-21 मूल्य: 400 रुपए।

कवि-कथाकार और पत्रकार से भी पहले हीरालाल नागर एक सैनिक हैं। 'डेक पर अँधेरा' शीर्षक से उनकी पुस्तक उपन्यास विधा के अंतर्गत प्रकाशित है, लेकिन वस्तुत: यह एक ऐसा संस्मरणात्मक आख्यान है, जिसमें भारत-श्रीलंका शान्ति समझौते के नतीजे में भारतीय सेना के श्रीलंका की धरती पर उतरने के बाद पेश आए हालात को बताया गया है। यह एक सैन्यकर्मी का आँखों देख-भोगा सच भी है, जिसे धीरे-धीरे, परत-दर-परत खोलने की प्रक्रिया में नागर जैसे कथा-कोलाज की एक नई विधा ही विकसित करते चले गए हैं, हिंदी कथा-साहित्य में ऐसे प्रयोग कम ही हुए हैं, सैन्य जीवन की गतिविधियों के चलते यहाँ एक ख़ास किस्म की कथा-भाषा का आनन्द तो मिलता ही है, रिपोर्ताज, संस्मरण, आत्मकथा, रेखाचित्र, कविता और गद्य का आत्मीय सम्बंध बनाता एक ऐसा कोलाज भी आकार लेता है जिसके बीच से कभी-कभार एक पत्रकार भी झाँकता नज़र आता है।

समुद्री यात्रा की कठिनाइयों के बीच भी पक्षियों की आवाज़ें सुनता, लहरों के नृत्य देखता नागर का कवि-मन ट्रिंकोयाली आते ही यथार्थ से जुड़ जाता है। इस बंदरगाह की उपयोगिता ही अमेरिका के लिए आकर्षण का विषय है। भारतीय शान्ति सेना समझौते की शर्तों पर विवश है और उसके सैनिक मारे जा रहे हैं। सैनिक सरकारी क्वार्टरों में हों या मोर्चे पर-एक तलवार उनकी और उनके परिवार की सुरक्षा पर हमेशा लटकी रहती है। इसके वृत्तांत को कथाकार गरुड़ पांडे के बहाने सामने रखता है। वह बताता है कि कैसे फौज का अनुशासन जवानों को गूँगा बना देता है।

कथाकार की नजर श्रीलंका में शान्ति सेना के ऊपरी कारोबार पर ही नहीं है, वह नायक पन्नि सिल्वम के एक तमिल लड़की से प्रेम; छुट्टी न मिलने पर आवेश में कम्पनी कमांडर की हत्या; और अफसरों व जवानों के बीच चौड़ी होती खाई को भी बारीक नज़र से देखता है। समसामयिक प्रसंगों को नागर एक पत्रकार की तरह पिरोते चले हैं। शान्ति सेना के मार्ग में अड़चनें और एलटीटीई के अनेकविध कारनामे यहाँ उजागर होते हैं। यह एक इनसाइडर का विवरण होने के कारण प्रामाणिक है। कथाकार ने इस कोलाज को आत्मकथात्मक होने से बचाते हुए औपन्यासिक जामा पहनाने की कोशिश ज़रूर की है, लेकिन बीच-बीच में चली आती सुन्दर कविताओं का कथा प्रसंगों से इतना गहरा नाता है कि कथानायक-नैरेटर स्वयं लेखक ही है, यह राज़ नहीं रह जाता। अच्छी बात यह है कि रचनाकार उस वक्त की इस सच्चाई को सहज ही पकड़ लेता है कि एलटीटीई-प्रमुख प्रभाकरन इतनी बड़ी हस्ती था नहीं, बल्कि उसे ख़ुदा बना दिया गया था। ऑपरेशन पवन; श्रीलंका के जवानों के बरक्स भारतीय सैनिकों की उपस्थिति; युद्ध की विभीषिका के बीच किसानों की स्थिति; भय और आतंक के बीच सैनिकों में बदलते अफसर; और समझौते की राजनीति को समझते हुए लेखक भूख-प्यास से बेहाल सैनिकों के विद्रोही कारनामों की कलई भी खोलता चला है। वह उसका अमानवीय चेहरा भी दिखाता है। उस वक्त वह सेना का अंग होते हुए भी जैसे एक तटस्थ नज़र से आँखों देखे सच को ईमानदार ज़बान में बयान करता है। उसके लिए सच सिर्फ भारतीय सेना नहीं है। युद्ध जैसी स्थितियों के बीच इन्फेंट्री के जवानों की विवश स्थिति हो या बंदी बनाई गई औरतों की फिक्र; अपने सैनिकों को मरता हुआ छोड़ सेना के आगे बढ़ जाने की मजबूरी हो, या इसी बीच मार्मिक राजवीर-प्रसंग-'डेक पर अँधेरा' की कथा बाँधे रहती है। कथाकार की सूक्ष्म नज़र से यह सच छिप नहीं पाता कि भारत के साथ श्रीलंका के राष्ट्रपति की मैत्री को सिंहली पसन्द नहीं कर रहे। समय की वृहद कथा के बीच नागर एक तरफ देशों की राजनीति को पर्दाफाश करते हैं और दूसरी तरफ विपरीत परिस्थितियों में रह रहे भारतीय जवानों की मनोदशा उजागर करते चलते हैं। जाफना किले के घटनाक्रम के बीच एलटीटीई की लड़कियाँ; उनके परिवारों में पल रहा स्वतंत्र राष्ट्र का नागरिक बनने का स्वप्न और टीएनटी से एलटीटीई तक का इतिहास ही नहीं-उसकी सक्रियता का आतंक और भारतीय जवानों की मौकापरस्ती के प्रसंग कथा को समुचित प्रवाह देते हैं। ऑपरेशन पवन बीच बनते तीन पक्षों के लोगों की वस्तुस्थिति; बीच-बीच में जागती श्रीलंका पत्रकारों की हवाई पूछताछ की दरिंदगी; पत्रकारों की हवाई पूछताछ के बीच जाफना के एक तमिल परिवार की मेहमानबाजी आदि उपन्यास के यादगार प्रसंग हैं।

चौथे अध्याय के प्रारंभ में ही संस्मरणात्मक प्रसंग के बीच कथा बताती है कि जाफना के लोगों की सद्भावना ही उन्हें शान्ति सेना के साथ ला सकती थी; लेकिन एलटीटीई की अगुवाई जिन्हें रास आ रही हो वे ऐसा कैसे कर सकते थे। युद्ध की-सी सक्रियता और फिर स्थितियाँ सामान्य होते ही जवानों की छुट्टी पर जाने की विकलता; शान्ति सेना के ख़िलाफ़ श्रीलंकाई सेना की भयातुरता के कारण शोक-दृश्य; घर लौटते जवानों की खुशी के साथ ही 'डेक पर अँधेरा' ने कुछ ऐसे कृष्णपक्षीय दृश्यों को भी प्रस्तुत किया है जो भारतीय सैनिकों के चरित्र पर भी सवा खड़े करते हैं।

इस कोलाज का शिल्प ही ऐसा है कि कथाकार को यह स्वतंत्रता मिल जाती है कि वह स्मृतियों में डूबता-उतराता वर्तमान से अतीत

व अतीत से वर्तमान में मनचाही आवाजाही करता रहता है। इस दौरान कथाकार का लेखक-व्यक्तित्त्व उससे कम ही अलग हो पाता है। वह इसी की नज़र से यह बड़ी सच्चाई पकड़ पाता है कि नब्बे हज़ार की भारतीय शान्ति सेना श्रीलंका में शान्ति व न्याय की स्थापना के लिए गई ज़रूर थी, लेकिन सौ प्रतिशत उसने ऐसा ही नहीं किया। बहुतेरा ऐसा भी हुआ जो नहीं होना चाहिए था। कथाकार का लोक-चरित्र यहाँ प्रतिरोध का स्वर बनकर उभरता है। कथा में भी और कथा के बीच-बीच में आने वाली कविताओं में भी। यह भारतीय सेना की ओर से एक जवान की आत्मालोचना ही है। इस कथा में जवानों के संवाद उनकी सहज प्रवाहमय और अकृत्रिम भाषा में आए हैं। सुन्दर दृश्य और स्मृतियाँ वे हैं जहाँ नैरेटर की मानवी सोच उभर कर आई है। उज्जवल रणसिहें जैसे छोटे-छोटे प्रसंग हों या हथियार के अलावा विश्वास करने लायक ओर कुछ न रह जाना; वन्नकुलम प्रसंग हो या मल्लीकुलम कैंप की स्मृतियों से झाँकती अमानुषिक यातना; युद्ध की स्थितियों के बीच में लिखी जा रही हो या 'बड़ा खाना' प्रसंग, रिपोर्ताज की लय में विकसित होती है कथा। संजय चौगलिया भले ही कथा-सुविधा के लिए किया गया नैरेटर का नामकरण हो, हीरालाल नागर उससे कभी अलग नहीं हो पाता। वह लहूलुहान जाफना के लिए मानवीय करुणा की मदद की ज़रूरत को पहचानता है; कविता-कहानी लिखता है; सेना की सेंसर व्यवस्था में पकड़ा जाता है; पर लिखना फिर भी बरकरार रखता है। यहाँ कथा अगर एक प्रमेय है तो कविता उसे हल करने को मौजूद है। सैनिक का गृह-वियोग हो या सेना का अनुशासन, मलाइतिवू का जंगल हो या कथानायक के रेडियो-सेट की पोजिशन, मीडिया-सेना की ऊपरी मुलाकात हो या सैनिकों की दरिंदगी के प्रसंग-लेखक वर्तमान में ही खोकर नहीं रह जाता। वह श्रीलंका में रह रहे सिंहलियों और तमिलों के पूर्वजों की खोज करता उन पुराकथा-प्रसंगों में भी उतरता है जो यह बताते है कि इनके पूर्वज भारत से ही वहाँ गए थे। वर्षों पहले विवेकानंद ने भी इसी तरह अनुराधापुर की खोज श्रीलंका में की थी। भारतीय सम्बंधों-संदर्भो के साथ, समाजशास्त्री की तरह श्रीलंका के विविध

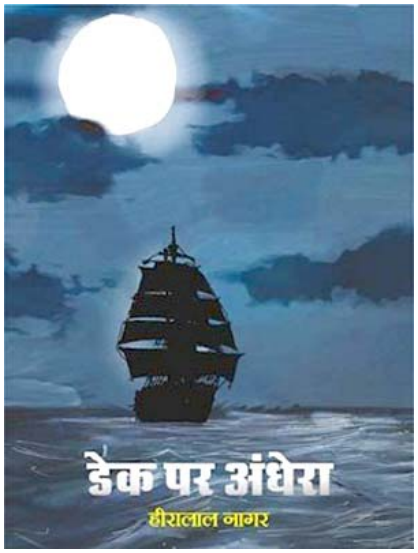


स्तरीय जीवन की खोज में रमा लेखक जब सैनिक जीवन की तरफ लौटता है तो एक कड़वा यथार्थ उसकी प्रतिक्षा में नज़र आता है। इसमें वह अन्तराल बना रहता है जो सैनिक व्यवस्था देती है। यहाँ अफसर के सामने सैनिक की कोई हैसियत नहीं होती। वहीं जब सैनिकों को फुरसत मिलती है, उनमें इच्छाएँ आकार लेने लगती है। वे उपभोक्ताओं और भोक्ताओं में बदल जाते हैं।

'डेक पर अँधेरा' की विशेषता यह है कि यह अपने शिल्प में कई स्वतंत्रताएँ हासिल कर लेता है। यह उपन्यास है या नहीं, संस्मरण है या सिर्फ रिपोर्ताज भर है-इस पर तो लम्बी बहस हो सकती है, लेकिन यह सच है कि इस पुस्तक के रूप में एक ऐसा इतिहास स्वत: लिखा गया है जो अन्यथा सामने न आता। जैसे नेशनल आर्मी के जवानों का ट्रेनिंग तो शान्ति सेना से लेना, लेकिन फिर एलटीटीई से जा मिलना; लड़ाई में जवान की मौत पर मातम न मनाना हो या गुरमीत को अधूरी हसरतों का अंत; गीजू भाई जैसे सैनिकों की सामान बाज़ार के हवाले कर देने की कारीगरी हो या कथा-नैरेटर की 'बेवकूफियों' का जिक्र; मेडिकल ग्राउंड पर पेंशन जाने पर मजबूर सैनिक हों या श्रीलंका सरकार पर पड़ रहे अंतरराष्ट्रीय दबावों का प्रभाव-हीरालाल नागर की नज़र हर ज़रूरी और भीतरी मुद्दे पर बनी रही है। छोटी-छोटी डीटेल्स का ऐसा खूबसूरत इस्तेमाल लेखक ने किया है कि युद्ध-जीवन के अनेक महारथी रूसी लेखकों की याद हो जाती है। हिंदी में तो बमुश्किल घनश्याम अस्थाना या फिर स्वदेश दीपक के ही नाम इस क्रम में लिए जा सकते है। लेकिन इन सबके बीच श्रीलंका के भोले नागरिकों की समझदारी भरी बातों को भी नागर ने बड़ी संजीवनी से सुना है- 'एलटीटीई को बढ़ावा इंडिया ने दिया। ट्रेनिंग इंडिया ने दी। हथियार इंडिया ने दिए। धन इंडिया ने दिया। फिर दोनों में यह दुश्मनी क्यों?' इसी उपक्रम में शान्ति सेना और प्रभाकरन में चल रही तनातनी के बीच बढ़ता जवानों का गुस्सा और तनाव कहानी को फिर शान्ति सेना की ओर खींच लाता है। इसके साथ ही लेखक के भीतर पनपता वह रूमान भी सामने आता है। जो उसमें रचना की नई ऊर्जा पैदा करता है। यही तेजवीर-रीना की कथा में प्राण भरता है। यही सुजाता के मार्मिक प्रसंग से दिल भारी कर देता है। यही है जो वावूनिया से लौटते वक्त कथानायक के हाथ में महज एक लकड़ी का बॉक्स रहने देता है।

श्रीलंका की स्मृतियाँ आसानी से मुक्त करने वाली नहीं है, इसीलिए कोटा पहुँचकर भी नैरेटर रह-रह कर ख़्यालों में वहीं लौट जाता है। इस कोशिश में छूट गई ज़रूरी चीज़ें सामने हो आती है। जैसे लिट्टे का अपनी ओर से टैक्स लगा देना; खुलेआम वसूली करना; और सबसे बड़ी बात श्रीलंका सरकार का दबाव में आ जाना। सरकार का ही नहीं, समाज का भी।

हीरालाल नागर की सादगी और सरलता ही यहाँ सबसे बड़ा हथियार भी बनी है। यही तत्त्व है जो निश्छल भाव से सेना में चल रहे भ्रष्टाचार का खुलासा करता है और पैसे से लेकर देह तक फैले इस आचरण को बेनकाव करता है-उसकी मजबूरियों के साथ। कहीं आत्मकथा तो कहीं जगबीती कहते नागर अगर इसे उपन्यास कहते हैं, तो इस विधा में अच्छी-खासी तोड़-फोड़ कर डाली है उन्होंने। यहाँ विधाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं और एक नई विधा गढ़ने की ओर बढ़ती दिखती है। लेकिन सबसे ऊपर है उनका वह साहस जो उन्हें सच सामने रखने की सलाहियत देता है। और वह कला जो कथा में भी इतिहास की प्रामाणिकता को बनाए रखती है।

❑❑❑

सी-351, सादतपुर, नई दिल्ली 94
मोबाइल 9013266057

समीक्षा

# भीतर की ओर खुलती कविताएँ

सरिता शर्मा

पुस्तक: पृथ्वी को हमने जड़ें दीं, लेखक: नीलोत्पल
प्रकाशक: बोधि प्रकाशन, जयपुर, मूल्य: 99 रु.

कविता और जीवन के बीच संबंध के बारे में बेन ओकरी ने कहा है- 'ईश्वर जानता है कि किसी भी समय के मुकाबले हमें कविता की ज़रूरत आज कहीं ज्यादा है। हमें कविता से प्राप्त होने वाले दुष्कर सत्य की जरूरत है। हमें उस अप्रत्यक्ष आग्रह की ज़रूरत है, जो 'सुने जाने के जादू' के प्रति कविता करती है। हमें उस आवाज़ की ज़रूरत है, जो हमारी खुशियों से बात कर सके, हमारे बचपन और निजी-राष्ट्रीय स्थितियों के बंधन से बात कर सके। वह आवाज़ जो हमारे संदेहों, हमारे भय से बात कर सके; और उन सभी अकल्पित आयामों से भी जो न केवल हमें मनुष्य बनाते हैं, बल्कि हमारा होना भी बनाते हैं - हमारा होना, जिस होने को सितारे अपनी फुसफुसाहटों से छुआ करते हैं। कविता सिर्फ वही नहीं होती जो कवि लिख देते हैं। कविता आत्मा की फुसफुसाहटों से बनी वह महानदी भी है, जो मनुष्यता के भीतर बहती है। कवि सिर्फ इसके भूमिगत जल को क्षण-भर के लिए धरातल पर ले आता है, अपनी खास शैली में, अर्थों और ध्वनियों के प्रपात में झराता हुआ।'

नीलोत्पल को कविता के लिए ज्ञानपीठ का नवलेखन पुरस्कार मिला है। उन्हें विनय दुबे स्मृति सम्मान भी प्रदान किया गया है। भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित प्रथम संग्रह 'अनाज पकने का समय' के पश्चात् उनका कविता संकलन 'पृथ्वी को हमने जड़ें दीं' आया है। नीलोत्पल अपनी रचना प्रक्रिया के बारे में प्रकाश डालते हुए कहते हैं- 'मेरे लिए कविता का चुनाव कोई घटना या उपलब्धि नहीं है। यह जीवन की तरह सहज और बेहतर मनुष्य की तलाश है। वह जीवन से आती है और व्यक्तिगत स्तर पर उसके बिखराव देखने को मिलते हैं। कई तरह की कसौटियाँ और शर्तें है जीवन में, राजनैतिक, सामाजिक स्तर। कवि का पक्ष और उसकी प्रतिबद्धता हमेशा स्पष्ट होनी चाहिए। कविता बहुत खामोशी और विनय से अपना काम करती है। भीतर वह झरने की तरह गिरती है और अनेक रूपों में बिखरकर नदी बन जाती है। साहित्य खुली ज़मीन से देखा गया आकाश है। कविता अपने भीतर एक क्रांति है। जीवन जहाँ अदब, प्रेम, रिश्ते छूटते जा रहे हैं, ऐसे में कविता की भूमिका ओर बढ़ जाती है। समाज के बुनियादी ढाँचे की तरह कविता बहुत बड़ा विचार और हमारी ऐसी ज़रूरत है, जो हर बार हमारे अंतिम होने पर खुलने वाला विश्वस्त विकल्प है।'

नीलोत्पल की कविताएँ भीतर की ओर खुलती हैं जैसा कि हम खड़े हैं कटे पेड़ों के नीचे कविता में परिलक्षित होता है -स्वर्ग और नरक में/ सिर्फ़ इतना-सा अंतर है कि/ एक का द्वार भीतर की ओर खुलता है/ एक का बाहर की ओर। उनकी कविताओं में मन के साथ- साथ समय और समाज के परिवेश को गूढ़ भाषा और शिल्प से अभिव्यक्त किया गया है। इस संकलन में प्रेम, प्रकृति, उम्मीद, औरतों, कवियों, समाज, मानवता, अनकहे, अकेलेपन और अधूरेपन पर बहुत डूब कर लिखा गया है। ये कविताएँ जीवन से उपजी हैं और अपने आसपास की स्थितियों का सटीक वर्णन करती हैं। वे समाज की विद्रूपता और मनुष्यता में हो रहे क्षरण पर सवाल उठाती हैं। उनमें कहन के कई स्तर हैं। कविताओं के शीर्षक बहुत काव्यात्मक और गूढ़ हैं जिन पर पाठक देर तक सोचता रहता है जैसे- मेरी छाती धड़कती है निर्वस्त्र मन को छूने पर, मैं बताना चाहता था फ़सलों की अनंत स्मृतियाँ, आग की इबारत, चुनी हुई मौतों के साथ, जब इल्लियाँ नाच उठेंगी। वे चेहरे जो गिरे मेरे अंधकार में, कविता एक मुक़ाम है।

संकलन की शीर्षक कविता पृथ्वी को हमने जड़ें दीं एम.एफ. हुसैन की मृत्यु पर लिखी गई है जिसने संकीर्ण सोच वाले लोगों की नफ़रत को रंगभरे कैनवास में बदल दिया था। वह एकांत में जख़्म सिलता रहा/ स्मृतियाँ सारी रंगों भरी थीं/ प्रेम के विपरीत जितनी कैंचियाँ थी/ रंगों ने उन्हें चींटियाँ बना दिया। जड़ का अर्थ बहुत गूढ़ है। अव्यक्त होते हुए भी वह जीवन प्राण है। हम आख़री बार कब मिले थे?/ क्या कविता का वह घर हमें याद है?/ जहाँ हम जड़ों की गहराई तक उतरे थे। पेड़ को काट दिए जाने के बावजूद जड़ अपने स्थान पर टिकी रहती है। नहीं होना भी जगह देना है/ उन असम्बद्ध चीज़ों को/ जो अपने भीतर जड़ों की तलाश में गुम हैं। जड़ें सुनती हैं कविता में- ज़मीन में पिछले छोड़े हुए/ कागजों, माचिस की जली तीलियों,/ लकड़ी के बुरादे, चींटियों के बुरे दरों की/ हल्की मद्धम आवाज़ें हैं/ जड़ें सुनती हैं इन्हें। बारिश उतार रही थी अपनी जड़ें कविता में- हवा ले आई उस सौंधी गंध को/ गड़ी थी ज़मीन के भीतर। महमूद दरवेश की याद में-धरती चूम रही तुम्हारा माथा/ सुनो, सुनो उसका जाना/ मिट्टी के भीतर/ जड़ों में।

संग्रह की कविताओं में प्रेम रूमानी होने के अतिरिक्त साथ जीए गए जीवन की अभिव्यक्ति हैं। प्रेम निराशा खत्म करता है, संघर्ष में सहारा देता है। दोनों के बीच बहुत कुछ अनकहा और अधूरा रह जाता है। तुम वह हो जिसे मैं नहीं जानता/ मैं वह हूँ जिसे तुम लोप करती रही हो। मैं तुम्हें बिना शब्दों और बिना नींद के देखता हूँ एकटक/ मैं तुम्हें आवाज़हीन सुनता हूँ'। जीवन संगिनी अनेक बार बलिदान करके कठिन समय में साथ देती है- कुछ चीज़ें जो नहीं हैं

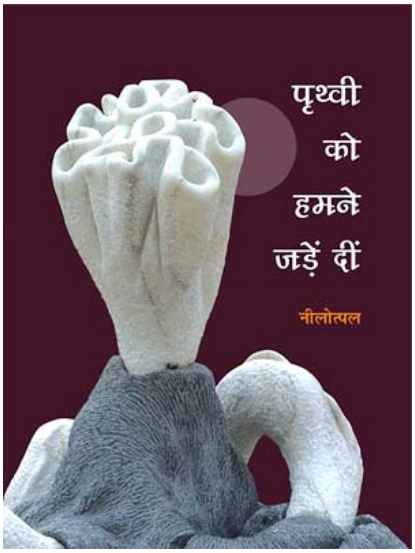


हमारे पास/ उनके मुताबिक ढाला तुमने ख़ुद को/ ख़ामोशी से। तुम्हारे सहारे ही जीता आया हूँ अँधेरा कविता में- उतर रही हो तुम/ मेरे अँधेरे में/ उदास मन और ज़ख़्मों को सहलाते हुए और तुम धरती-आकाश हो कविता में प्रेम मन की गहराई में जड़ें जमा लेता है--तुम ऐसी बेचैनी हो जो/ छूटती नहीं आदि से अंत तक/ मिट्टी की तरह प्रवेश करती हो/ अपनी जड़ें भीतर फैलाती हुई। अनुपस्थिति में भी प्रेमिका गंध की तरह व्याप्त रहती है- हर जगह तुम नहीं हो।/ लेकिन चींटियों की तरह निशब्द/ तुम्हारी मौजूदगी छोड़ती जाती है अपनी गंध/ जो भरती है धरती और आकाश की तरह/ हमारे बीच का ख़ालीपन। प्रेम के ऐन्द्रिक पक्ष को बहुत कोमलता से छुआ गया है- मेरी छाती धड़कती है/ निर्वस्त्र मन को छूने पर/ यहाँ नहीं होता किसी तरह का मान या अपमान।

औरतों के जीवन संघर्ष के प्रति लेखक की संवेदनशीलता अनेक कविताओं में दिखाई देती है। माँ, प्रेमिका, पत्नी, दुखियारी बुज़ुर्ग महिला, मज़दूर की बीवी और बर्तन माँजने वाली बाई- कवि का नजरिया इन सबके प्रति करुणामय है। समाज में महिलाओं पर हो रहे अत्याचारों को इंगित करते हुए क्या होगी इस वक़्त की सही आवाज़ कविता में लिखा है- औरतें तो अमूमन वही होंगी/ लेकिन वे पंचायतें/ जिनमें गौत्र, जाति, धर्म की रस्म अदायगी टूटी नहीं/ वे कितनी औरतों के मालिक होंगे, कितनों के भक्षक। नमक का पानी आँसुओं का प्रतीक है-घंटे भर से रो रही है / वह औरत .. मिट्टी सोख रही है नमक का पानी/ सुखा देगी हवा उसके गालो पर ठहरे दुख को/ एक औरत का संघर्ष/ किसी तरह दुख के ढलान से लौट जाता है। ज़िंदगी की ढोई मैली रंगत में-इन मैले झूठे बर्तनों में कितनी चमक बाकी है/ कोई नहीं जानता सिवाए उसके/ जो अँधेरे घरों से निकल रही है। सुखिया मौसी ऐसी अभागी है- सुख जैसे उसके लिए रिक्त स्थान की तरह रहा/ जिसे वह कभी नहीं भर पाई । वह जीवन को जीवन देती आवाज़ कविता चक्की चला कर घर का निर्वाह करने वाली माँ के संघर्ष को उजागर किया गया है। कबीर के दोहे चलती चाकी देखि के दिया कबीरा रोय/ दो पाटन के बीच में, साबित बचा न कोय में चक्की के दो पाट जीवन और मृत्यु के प्रतीक हैं। वह जीवन को जीवन देती आवाज़ कविता लेखक के जीवन से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। चक्की की आवाज़ में जीवन संगीत गूँजता है- मैं अंतर नहीं कर पाया / ज़िंदगी और चक्की में/ लेकिन जब गेहूँ, मक्का, बाजरा, दाल या ज्वार/ पिसी जाती / मुझे अहसास होता कि / मैं अपनी भेड़ें चराता/ सुन रहा हूँ पहाड़ी संगीत.../ मैं कभी नहीं जान पाया / माँ और चक्की किस तरह अलग हैं / एक-दूसरे से. चक्की चलते रहना आश्वस्त करता है और घर में खुशहाली का कारण है- इसकी घर्र-घर्र करती मशीनी आवाज़ ने/ टूटने नहीं दिया भीतरी इंसान को और इसके चलते रहने से/ घर की इंटें नाचने लगती थीं/ जैसे गा रही हों सदियों से कोई गीत/ जैसे नदी की सतह पर तैरता हुआ पत्थर। लेखक को थोड़ा सा अनाज पिसवाने के लिए आने वाले ग़रीब लोगों की फ़िक्र है। जिन्हें छोटा और नीच कहा/ उन लोगों के दानों और जीवन में/ कोई अंतर नहीं था।

इस काव्य संकलन का प्रमुख आकर्षण पुराने और समकालीन कवियों को समर्पित कविताएँ हैं। अपने आदर्श कवियों में लेखक को अपनत्व महसूस होता है और वे उसे परिवार जनों से भी अधिक अपने बन जाते हैं। इन कविताओं में हमें कवियों के व्यक्तित्त्व और लेखन के सूक्ष्म संकेत मिलते हैं। कुछ भी प्रत्यक्ष न कहते हुए कवियों के अमूर्त स्केच बनाए गए हैं। शुक्रिया कविता में कवि अपने मार्गदर्शक कवियों का आभारी है। शुक्रिया सारे कवियों का / जिन्होंने जीवन को नए अर्थों से भर दिया / ऐसे अर्थ जो हमें मालूम नहीं थे। मुक्तिबोध के लिए रंदे से अग्नि की छिलपटें उतारते कविता में उनकी बेचैनी और छटपटाहट को महसूस किया जा सकता है- चुप रहो और सुनो/ भीतर पकी हुई दीवार से पलस्तर का गिरना/ ढहना हमारी चेतना का। सुशोभित सक्तावत के लिए लिखी कविता खाली आकाश खाली नहीं में- मैं तुम्हें देखता हूँ/ जैसे ख़ाली आकाश/ ख़ाली नहीं/ वहाँ बारीश है,/पत्थर है, कपास है। हम दे रहे हैं जीवन को/ नाख़ूनों के काटे जाने की मियाद तक/ हम अपने शब्दों की मुहर हैं। महमूद दरवेश के लिए शब्द ज़ख़्मी हैं तुम्हारी ज़िद के कारण कविता में मानो उनके समूचे परिवेश को उभारा गया है- पुकारता हूँ/ तुम्हारी कविता के ज़रिए.../ यह एक उजाले वाली शाम.../ मेरी साँसों की गिरफ़्त में / एक छटपटाता हुआ स्वर/ समुंदर किनारे, रेत के धँसाव में अंगूर की धार-सा तीखा और तेज़/ तुम्हारा आज़ादी और मुक्ति का सपना/ देख रही है यह दुनिया।

नीलोत्पल ने कई कविताओं में अदृश्यता और अनकहे को आवाज़ दी है। बहुत मुश्किल है मैं अपने नहीं कहे को जानूँ/ मैं एक विपरीत दिशा वाला व्यक्ति/ कहूँ कि मेरी वह छिपी आवाज का प्रस्फुटन/ कविता की तरह है। रास्ते वहाँ भी हैं कविता में यदि तुम नहीं दिखे समुद्र की तलाश में हो तो/ खुदाई शुरू करो/ समुद्र तुम्हें तमाम रास्तों के बारे में/ अपने अनुभव बताएगा। दिखता नहीं चिड़ियों का प्रेम कविता में तरक़्क़ी की इमारत भले नष्ट हो जाए एक दिन/ बचेगा यही जो अनकहा रह गया। शब्द इतने प्रभावशाली होते हैं कि कल्पना को जीवंत कर देते हैं। कवि शब्दों के घर में रहता है जिसे उसने खुद बनाया है। मैंने शब्दों के भीतर उतरकर देखा/ वे ज़िंदा थे। इन्हीं शब्दों ने मछलियों की तरह।/ मेरे उदास समुंदर में रंगीनियाँ भरीं/ यही मेरा घर है/ यही दुनिया। इसी तरह कविता एक मुक़ाम है कविता में कवि अपनी मंजिल की बात करता है.-शब्दों का एक लम्बा हाईवे है/ जो कहीं ख़तम नहीं

होता/ कविता एक मुक़ाम है/ जहाँ घिरी बातों के साथ/ हम पहुँचते हैं। कुछ कविताओं में आत्मकथन और लेखन के उद्देश्य पर भी प्रकाश डाला गया है। मैं लिखता हूँ/ समय, नियम, संविधान के बाहर। मैं तैरता हूँ अधूरे से पहाड़ पर/ वहाँ से गिरना भी लगभग अंसभव। स्मृतिहीन कविता में मैं बैठा हूँ छत पर/ स्मृतिहीन/ नहीं नक्षत्रों की बरसती रोशनियाँ/ उजाले और अंधेरे के मुखौटे नहीं/ भीड़ नहीं, दखल नहीं/ यंत्रणा, संताप नहीं। एक आदमी की प्रकृति कविता में कवि अपने मनचाहे जीवन की इच्छा करता है। मैं अपने भीतर कई स्त्रियाँ देखता हूँ/ रचता हूँ एक घर/ चाहता हूँ एक इंसान जो यक़ीन करे/ मेरे लफ़्ज और सुंदरता पर। मेरी एक जगह थी कविता कवि के अंतर्मन की हलचलों को प्रतिबिम्बित करती है। ज़मीन मेरे लिए शवों को ढोती / बनी रही तप्त चट्टान.. मैं जुड़ता चला गया सपनों से/ लोगों ने मुझे बहुत दुलारा/ उनकी आवाज़ मेरी आवाज़ में/ घुलती चली गई।

इन कविताओं में राजनीति, समाज, बाजार जीवन, प्रकृति, परिवेश और मानवीय मूल्यों क्षरण के प्रति कवि का सरोकार नजर आता है। अब के रक्तबीज पनपे कविता में अव्यवस्था और साम्प्रदायिक दंगों के प्रति चिंता व्यक्त की गई है–क्यों भड़का हुआ–सा इंसानों का हुजूम?/ कहीं माँग, कहीं आंदोलन/ उत्पात, हड़ताल, तोड़फोड़, आगज़नी/ इंसान कहीं नहीं/ अब के रक्तबीज पनपे/ मैं निकला हूँ जड़ें कुरेदता/ कौन–सा धर्म बड़ा ?/ पूछता हूँ अंधेरे भरे कोनों से / कितनी लाशें हमारे कंधों पर। राजनीतिज्ञ जिन्हें प्यार नहीं वोट चाहिए,/ वैज्ञानिक जिन्हें सूत्र और सूत्रधार,/ धार्मिक अनुष्ठान जिन्हें पाखंड और कट्टरता/ मेले और सभाएँ जिन्हें भीड़ और तमाशबीन। धूमिल के अनुसार– 'कविता का एक मतलब यह है कि आप आज तक और अब तक कितना आदमी हो सके हैं । कविता की असली शर्त आदमी होना है ।' संकलन की ज़िंदगी को हमने वहाँ पाया/ जहाँ दुकानें, सम्बन्ध, मठ, मंदिर और गिरिजाघर नहीं थे/ हम उन पुराने बैरकों से लौटते रहे/ मैं सिर्फ़ इंसानों को जानता हूँ.../ जिनके अपने मिटाए कई इतिहास हैं । कवि निराशजनक स्थितियों में भी उम्मीद का नहीं छोड़ता है। हमने कभी फ़ातिहा नहीं पढ़ा ज़िंदगी की हार पर कविता का स्वर बहुत आशावादी है। पत्थरों पर कई गीत लिखे/ जो मिटाए नहीं जा सके/ न्याय के लिए अदालतें नहीं/ गवाही भीतर होती थी। कोरे शब्द नहीं रहे कभी हमारे पास/ उनमें सच्चाइयाँ थीं हमारे ख़ून की। मैंने अपने दिनों को उम्मीदों से सराबोर रखा कविता में मेरे मरने के बाद भी/ इस दुनिया को सुंदर बनाने की कोशिश जारी रखना/ मैं जो खटता और खपता रहा हूँ तुम्हारी ही तरह। कवि ने किसानों की खुशहाली की कल्पना की है। तितलियाँ और भौंरे पक चुकी ज्वार और मकई की बालियों पर/ बेसुध मंडराएँगे/ कलम स्वत: बंद हो जाएगी/ तुम्हारे चेहरे, हथेलियों और पीठ की खुरच से/ लहक उठेगी/ जिंदगी जानेगी नमक का स्वाद। कृषक तुम्हारे चेहरे, हथेलियों और पीठ की खुरच से लहक उठेगी/ ज़िंदगी जानेगी नमक का स्वाद।

संकलन की अनेक कविताओं में प्रकृति के बिम्बों का प्रतीकात्मक उपयोग किया गया है। समुद्र और बरसात के बिम्ब मन और जीवन के द्योतक हैं– यहाँ कोई अचानक पार करता है/ सदियों से रीते समुद्र को/ कोई उतरकर रख देता है/ सड़कों पर/ अपने नंगे पैर/ उनके गीले होते ही भर जाती है लहर/ दिमाग में जंगलों में भींगी जड़ों की। हमें गढ़ा नहीं जा सकता कविता में प्रेम के जटिल रिश्ते को प्रकृति के साथ जोड़कर कलात्मक ढंग से दर्शाया गया है – तुम पृथ्वी के हरेपन से आती/ एक आवाज़/ एक आवाज़ ख़ामोशी से हो रही बारिश की/ एक आवाज़ घास में उतरती रोशनी की/ जो बीज ज़मीन पर बिखरे पड़े थे / वे उग आए एक दिन। एक आदमी की प्रकृति में कविता में बुल्ले शाह की तरह मानव देह को मिटटी बताया गया है– मिट्टी का लोच, मिट्टी की गात/ वह रूप जो बाहर नहीं भीतर होता है/ उस तरह से तो मैं मिट्टी ही हूँ/ ढलने और बिखरे जाने के लिए।

नीलोत्पल की कविताएँ ज़मीन के भीतर बहते जल की तरह पाठक को तरंगित करती हैं। निजी और बाहर की दुनिया में समन्वय मौलिक बिम्बों के माध्यम से बहुत कोमलता से स्थापित किया गया है। उथल– पुथल भरे माहौल में साहित्य और सकारात्मक सोच कवि की आस्था की डिगने नहीं देते। अपने आसपास घट रही सब घटनाओं के प्रति कवि सजग है। कुछ कविताएँ बहुत गूढ़ है जिनके अर्थ तक पहुँचना पाठक के लिए श्रमसाध्य है । समकालीन कवियों में नीलोत्पल एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं जो हर कविता के साथ अनूठे बिम्बों और विचार जगत से परिचय करते हैं। इस संकलन में मन की सूक्ष्म अनुभूतियों और सामाजिक सरोकारों को बहुत खूबसूरती से पिरोया गया है।

❐❐❐

1975, सेक्टर 4, अरबन एस्टेट, गुड़गाँव, हरयाणा 122001
मोबाइल 9871948430

## लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें। कृपया रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। –संपादक
shivna.prakashan@gmail.com

पड़ताल

# दो संस्कृतियों की दृश्य सीमा रेखा

जया जादवानी

नक़्क़ाशीदार कैबिनेट – (उपन्यास : सुधा ओम ढींगरा)
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर मप्र, मूल्य 150 रुपये, पृष्ठ 120, वर्ष 2016

नक़्क़ाशीदार कैबिनेट – सुधा ओम ढींगरा का नया उपन्यास है और मेरे लिये उनका पहला। इसके पहले उनकी कुछ कहानियाँ पढ़ी तो हैं पर मेरी स्मरण शक्ति वैसे ही काफ़ी ख़राब है। मैं बहुत चीज़ें याद नहीं रख पाती। विदेश प्रवास ने एक तरह से कुछ उन साहित्यकारों से भी मुझे मिलवाया, जिन्हें अपनी मातृभूमि से उतना ही प्यार है जितना हमें बल्कि ऐसा कहें कि कुछ ज़्यादा। ये कहने की मेरे पास अपनी वजहें तो हैं हीं, उनके द्वारा किये गए वे तमाम काम भी हैं, जो साहित्यकार होने के अलावा भी वे करते हैं। बहरहाल, अभी इस उपन्यास पर ही मैं खुद को फ़ोकस करना चाहती हूँ और ये प्रतिक्रिया एक पाठक की प्रतिक्रिया है।

उपन्यास में विदेश में रह रहे पति-पत्नी डॉ. सम्पदा और सार्थक की कहानी है..जो अमेरिका के नए परिवेश में रहते उन नई परिस्थितियों से समायोजन करते भी अपने देश और लोगों के लिये उनके दिल बेहद संवेदनशील हैं। उपन्यास अमेरिका में आए हरिकेन और टारनॉडो तूफ़ान के आने और उससे उपजी त्रासदी से मिल –जुलकर जूझने और अमेरिकी पुलिस की तत्परता से शुरू होता है जो उस तूफान में भी चोरों को पकड़ने हेलीकाप्टर में आती है। दृश्य इतने सजीव हैं कि कहानी घटित हो रही जान पड़ती है उनके लिये तो और भी जो एक न एक बार वहाँ जा चुके हैं। उस बारिश में भीगता एक नक़्क़ाशीदार केबिनेट खुलता है और खुलती है एक डायरी ...भावनाओं और संघर्षों की अनवरत बारिश...मन बेतरह भीगता है....कहानी एक पंजाबी लड़की सोनल की है, जिसका जीवन दुर्घटनाओं की एक श्रृंखला है...न सिर्फ़ उसका जीवन ..समूचे परिवार का जीवन...समूचा गाँव और समूचा पंजाब भी कई किस्म की दुर्घटनाओं का मारा है। बहुत सलीक़े से वे सारी बातें आती हैं। न कहीं थोपी हुई लगती हैं न कहीं अतिरंजित। सोचती हूँ, अपने गाँव और अपने अतीत से हम औरतों का कितना जुड़ाव होता है ? पर हम सबसे ज़्यादा वहीं मारी जाती हैं..वहीं दफ़नाई जाती हैं। वही हमारे फूल खिले बिना मुरझा जाते हैं.. उपन्यास कई स्तरों पर एक साथ चलता है। कई जोखिमों से गुज़रता भी लड़खड़ाता नहीं।

दोहरी मानसिकता और पैसे की भूख हम भारतीयों के खून में है, इसके लिये किसी भी हद तक चले जाने के हज़ारों उदाहरण आपको मिल जाएँगे। पर बातें करने में हमारा कोई सानी नहीं। बातें हमारे चरित्र को ढँकने का बेहतरीन आवरण हैं। जिन गाँवों की बातें हम बड़े गर्व से करते हैं, उन्हीं गाँवों में अपराध फैलते हुये सरहद पार जाते हैं, उनका आसान निशाना होती हैं लड़कियाँ।

सोनल की शादी बलदेव से जबरदस्ती करवाई जाती है जो अमेरिका से आया है। बलदेव उससे देह व्यापार के साथ –साथ ड्रग्स का धंधा भी करवाना चाहता है...बलदेव की कमीनिगियों का कोई हिसाब नहीं। सोनल अमेरिका पहुँच जाती है और आख़िरकार बहुत मुश्किलों से वहाँ से छूट पाती है, अपने दोस्त सुक्खी की, डॉ. साहिबा और अपने साहस की वजह से। घटनाओं की अटूट श्रृंखला राह से नहीं भटकाती। गाँव का जीवन, वहाँ की गंदी और ओछी राजनीति, उसमें कुछ लड़कियों और औरतों का जीवन, वहाँ के समाजी काँटे, वहाँ की बिकाऊ पुलिस, पंजाबी जीवन के संघर्ष, पंजाब का बदलता परिवेश, पाश का जीवन, जो धार्मिक कट्टरता के खिलाफ़ था और उसे खालिस्तानियों ने गोली मार दी। यह उपन्यास सारे सवालों का जवाब नहीं देता बल्कि उन्हें आपके सामने खड़ा कर देता है। क्योंकि तय उसे नहीं हमें करना है।

अंत में सोनल और सुक्खी विदेश में रहते हुए एक संस्था बनाते हैं जिसमें विदेशों में देह-व्यापार के लिये फँसी हुई लड़कियों को खोजना और उन्हें मुक्त करवाना ही उनका मकसद है....पंजाब के गाँवों के प्रतिभाशाली बच्चों को उच्च शिक्षा और चिकित्सा मुहैया करवाने का भी। और गौर करने की बात तो यह है कि यही काम अपने देश में करना चाहो तो हज़ार अड़चनें। भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी ने समूचे तंत्र को खोखला कर दिया है। यहाँ अमेरिकी जीवन और भारतीय जीवन की तुलनात्मक झलकियाँ भी बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं।

उपन्यास बेहद पुरज़ोर तरीके से अपनी बात कहता है। ये उसकी सफलता भी है। भाषा अलबत्ता और मेहनत की माँग करती है। किस्सा –कोताह यह कि इस उपन्यास को पढ़ना ज़रूर चाहिए ताकि दो संस्कृतियों की दृश्य सीमा रेखा को महसूस किया जा सके, उसे समझा जा सके।

❐❐❐

बी-136, वी.आई.पी. एस्टेट, विधान सभा मार्ग, रायपुर
(छत्तीसगढ़) फोन 91-9827947480

# 'वाबस्ता' कानों को सुकून और रूह को तसल्ली देने वाला ग़ज़ल एल्बम

हृदेश सिंह

फ्यूजन और शोर शराबे वाले संगीत के इस दौर में ग़ज़ल का नया एल्बम 'वाबस्ता' कानों को सुकून और रूह को तसल्ली देने वाला है। अपेक्षाकृत नई म्यूज़िक कम्पनी 'आडियो करी' ने इस एल्बम को रिलीज़ किया है। एक नई म्यूजिक कम्पनी द्वारा इस तरह का एल्बम निकालना इस दौर में एक साहसिक कदम ही कहा जाएगा। बहरहाल सुखद बात यह है कि इस एलबम में सात ग़ज़लें हैं जिन्हें रूप कुमार राठौर, साधना सरगम और मो. वकील जैसे नामचीन गायकों ने बहुत सलीके से गाया है। एल्बम में संगीत दिया है अहसान मोहम्मद ने और इन ग़ज़लों को लिखा है पवन कुमार ने। बहुत कम लोग जानते होंगे कि पवन कुमार एक आई.ए.एस. अधिकारी हैं, ग़ज़लों के जरिए अपनी फ़िक्र और अंदाज़े बयाँ से वे श्रोताओं को ताज्जुब में डालते हैं।

'वाबस्ता' एल्बम में आठ ग़ज़लें हैं। गायकी, संगीत और लफ़्ज़ों के पैमाने पर ये आठों ग़ज़लें अपनी विशिष्टताओं के कारण खरी उतरती हैं। इस एल्बम की आइकॉन गजल 'धीरे -धीरे दर्द फना हो जाता' है, जिसका का वीडियो शूट यू-ट्यूब पर पहले ही काफी लोकप्रिय हो चुका है। रिलीज़ होने के दस दिनों के अन्दर ही डेढ़ लाख लाइक्स/कमेन्ट इस वीडियो की लोकप्रियता का बखान करते हैं। यह ग़ज़ल इस मायने में ताज़गी का अहसास कराती है कि इसमें नज़्म और ग़ज़ल को एक साथ गूँथा गया है। रूपकुमार की गायकी और यासिर खान के वॉयस ओवर के संगम ने इसे बार-बार सुनने लायक बना दिया है। लफ़्ज़ों के हिसाब से यह ग़ज़ल उत्कृष्ट है। इस ग़ज़ल का वीडियो एल्बम पंछी जालोनवी ने निर्देशित किया है। उन्होंने इस ग़ज़ल को दर्शनीय तरीके से प्रस्तुत किया है। संगीत प्रेमी जानते होंगे कि पंछी ने दस और रा-वन जैसी कामयाब फिल्मों में लोकप्रिय गीत लिखकर नाम कमाया है। बतौर निर्देशक उनका यह पहली वीडियो है। अपने डेब्यू को शानदार बनाने में उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी है। नए चेहरों से ग़ज़ल के मुताबिक भाव पूर्ण अभिनय कराते हुए, मनोहारी लोकेशन्स पर अच्छा कैमरा वर्क इस वीडियो एल्बम का प्लस प्वाइन्ट है।

इस एल्बम की दूसरी ग़ज़ल 'ज़मीं पर इस कदर पहरे हुए हैं ' अपने आसान लेकिन गहरे लफ़्ज़ों की वजह से ज़बाँ पर चढ़ती है। इसे भी रूपकुमार राठौर ने जिस मखमली अंदाज़ से गाया है वो दिल को छूता है। आज के दौर को बयाँ करते हुए अलफ़ाज़ इस ग़ज़ल को और पुख़्ता बनाते हैं। 'ज़रा सी चोट को महसूस करके टूट जाते हैं/ सलामत आइने रहते हैं चेहरे टूट जाते हैं' जैसे अल्फ़ाज़ के साथ रूप कुमार ने इस एल्बम की तीसरी ग़ज़ल पेश की है। एहसान अहमद के सुकून देने वाले संगीत ने इस ग़ज़ल को और भी प्रभावी बना दिया है। इस एल्बम की दो अन्य ग़ज़लें 'आस बाकी है' और 'दिल में कोई ख़लिश' को युवा ग़ज़ल गायक मो. वकील ने गाया है। म्यूज़िक चैनल्स पर लगातार दिखाई पड़ते रहने वाले, शास्त्रीय संगीत के जानकार और सुरों पर गहरी पकड़ रखने वाले मो. वकील की मीठी आवाज़ इन ग़ज़लों से श्रोताओं को बाँधे रखती है। मुश्किल अल्फ़ाज़ को भी मो. वकील ने जिस तरह निभाया है वो काबिले-दाद है। इन ग़ज़लों में जो संगीत है वो नई पीढ़ी को ध्यान में रखकर बनाया गया है। गिटार, वायलिन की संगत में मो. वकील की आवाज़ जादू सा असर पैदा करती है।

एल्बम की अगली ग़ज़ल 'रात-दिन' प्रख्यात पार्श्व गायिका साधना सरगम के स्वर में है। साधना सरगम की गायकी अपने आप में एक शिनाख़्त है। 'रात दिन अपने घर में रहता है/ जाने कैसे सफ़र में रहता है' जैसे अश्आर को साधना सरगम ने बेहद मीठे और मोहक अन्दाज़ में गाया है। उनके चाहने वालों के लिए यह ग़ज़ल अनमोल तोहफा है। इस एल्बम की एक और ग़ज़ल 'यूँ तो हर पल इन्हें भिगोना ठीक नहीं/ फिर भी आँख का बंजर होना ठीक नहीं' को रूपकुमार राठौर ने एक अलग अन्दाज़ के साथ गाया है। पुरअसर आवाज़ के साथ ठहराव लेते हुए इस ग़ज़ल को उन्होंने जिस तरीके से गाया है, वो श्रोताओं से एक राब्ता कायम करती लगती है।

सात ग़ज़लों वाले इस एल्बम में एक इंस्ट्रूमेंटल वर्शन भी है। दिलशाद ख़ान ने 'ज़मीं पर' का एक इंस्ट्रूमेन्टल वर्शन भी इस एल्बम में बतौर 'बोनस' पेश किया है जो मन को छूता है। आँखें बन्द करके इन ग़ज़लों को सुनिए तो ये ग़ज़लें कहीं गहरे में जाकर आपसे गुफ़्तगू करती हैं। गुलज़ार के साथ रूपकुमार और साधना सरगम ने एक अरसा पहले एक एल्बम 'वादा' किया था। अपनी तमाम मौलिकताओं के बाद भी ये एल्बम कहीं-कहीं उसी कड़ी को आगे बढ़ाता दिखता है। कहा जा सकता है कि अरसे बाद कोई ग़ज़ल का एल्बम आया है जो अच्छी ग़ज़ल सुनने वालों को बिल्कुल निराश नहीं करेगा। इस साहसिक प्रयास के लिए ऑडियो करी को बधाई।

❐❐❐

# महत्त्वपूर्ण पुस्तकें
## तीन विधाएँ
## तीन लेखक
## तीन पुस्तकें

लता जी पर कितना-कितना लिखा जा चुका है लेकिन फिर भी जब भी उन पर कुछ नया सामने आता है, तो हमें लगता है कि -अरे! यह तो हमें पता ही नहीं था। लता जी हमारे समय की सबसे विशिष्ट हस्ती हैं। हम सब इस बात के लिए हमेशा गौरव महसूस करते हैं कि हम लता जी के युग में हुए हैं। जब लता जी की आवाज़ शहद की तरह हमारे कानों से होते हुए हमारे प्राणों को स्पंदित करती है, तो सब कुछ थम जाता है। लता जी का होना हमारे समय की सबसे बड़ी ख़ासियत है। हर पीढ़ी उनके गानों को सुनती रही है, सुनती रहेगी। उनके गाए हुए गाने सदियों तक गूँजते रहेंगे।

लता जी पर इस वर्ष एक विशिष्ट पुस्तक आई है, जिसे लिखा है विशिष्ट गद्यकार यतीन्द्र मिश्र ने। 640 पेज की यह पुस्तक हर पन्ने पर लेखक द्वारा किए गए श्रम की कहानी कहती है। लता जी के विराट् व्यक्तित्व को वैसे तो 640 पेजों में भी नहीं समेटा जा सकता लेकिन यतीन्द्र ने यह कमाल भी कर दिखाया है। पुस्तक लता जी के जीवन के कई सारे पहलुओं को उजागर करती है। रोचक तथ्य यह है कि 640 पेजों की इस पुस्तक में भूमिका तथा संदर्भ सूची को छोड़ दें तो कुल तीन ही अध्याय हैं। पहला आज 'फिर जीने की तमन्ना है' जिसमें लता जी की सांगीतिक यात्रा पर विचार सम्मिलित हैं। यह खंड लगभग 170 पेजों का है जिसमें 100 रोचक तथ्यों तथा जानकारियों को संकलित किया गया है। दूसरा खंड 'कुछ दिल ने कहा.. ऐसी भी बातें होती हैं..' लता से यतीन्द्र मिश्रा का संवाद है। यह खंड लगभग 375 पेजों का है। पौने चार सौ पेजों का साक्षात्कार....? इस साक्षात्कार को शायद गिनीज़ बुक ऑफ रिकार्ड्स में स्थान मिल सकता है। इससे पूर्व इतना लम्बा साक्षात्कार कम से कम हिन्दी में तो कोई अन्य नहीं देखने में आया है। तीसरा अध्याय है प्रतिनिधि गीतों का चयन 'तेरे सुर और मेरे गीत..'। इमसें लता जी के प्रतिनिधि गीतों का संकलन किया गया है। यह खंड लगभग 35 पेजों का है। इस प्रकार 640 में से 580 पेजों में यह तीन खंड फैले हुए हैं।

लता जी के बारे में पहले खंड में कई रोचक जानकारियाँ यह पुस्तक प्रदान करती है। जैसे कि यह कि उन्हें होली का त्यौहार बिल्कुल पसन्द नहीं है। रंगों में भीगना उन्हें बिल्कुल नहीं सुहाता है। या फिर रघुवीर सहाय और लता मंगेशकर की जुगबंदी में रचे गए एकमात्र गीत 'प्रिय आओ, संग सो जाओ, बरसे घन सारी रात' की चर्चा। फिल्म 'तरंग' का यह गीत इस मामले में भी विशिष्ट है कि रघुवीर सहाय ने फिल्म हेतु यह एकमात्र गीत लिखा था। देश विभाजन के बाद पाकिस्तान जा बसे शायर हबीब जालिब के सन्दर्भ में यह तथ्य भी इस पुस्तक के माध्यम से पहली बार सामने आता है कि जेल में बंद रहने पर लता मंगेशकर की गायकी के चलते जीने की आशा को उन्होंने बचाए रखा था।

एक बहुत ही रोचक बात लता जी की समय की पाबंदी के विषय में सामने आई है। यह बात यतीन्द्र मिश्र द्वारा दस मिनट लेट हो जाने पर लता जी द्वारा कही गई है 'जिस गायिका के जीवन पर आप यह सब लिखना चाहते हैं, उसका पूरा संगीत जीवन ही तीन-चार मिनट के गीतों की अवधि से बना है। आप दस मिनट लेट होंगे, तो इतने में तो मेरे तीन गीत रेडियो और रेकॉर्ड पर बजकर निकल जाएँगे।' सलीक़ा महान् लोगों का पहला गुण होता है। लता जी ने जिस सलीक़े से यहाँ बात को कहा, उसे सुनकर मौन के अलावा और कुछ नहीं किया जा सकता।

लता जी और मीनाकुमारी की जुगलबंदी को लेकर भी एक छोटे से खंड में बहुत दिलचस्प जानकारी दी गई है। पुस्तक कहती है- 'पचास और साठ के दशक के लता मंगेशकर के गाए हुए अधिकांश दर्द-भरे गीत, मीनाकुमारी के किरदारों पर ही फ़िल्माए गए थे।' पुस्तक में यह जानकारी भी मिलती है कि अनिल विश्वास ने एक बार लता जी को कोरस के साथ खड़े होकर गाने को कहा था और लता जी ने किसी आज्ञाकारी बच्चे की तरह सुरिन्दर कौर के गीत में कोरस में अपनी आवाज़ प्रदान कर दी थी। यह जानकारी बताती है कि लता जी क्यों महान् हैं।

एक और रोचक जानकारी 'कहीं दीप जले कहीं दिल' जैसे अमर गीत के बारे में भी दी गई। लता जी इस गीत की रिकार्डिंग के पूर्व गंभीर रूप से बीमार थीं। उनका गायन लगभग छूट चुका था। हेमंत कुमार ने

इस गाने को लता जी को बताए बिना ही फाइनल टेक में रिकॉर्ड कर लिया था। बाद में इस गीत ने जो इतिहास बनाया वह अलग से बताने वाली बात नहीं है।

दूसरा खंड 'कुछ दिल ने कहा.. ऐसी भी बातें होती हैं..' लता जी के साथ एक लम्बा साक्षात्कार है। इस खंड में यतीन्द्र मिश्र ने कई पहलुओं पर चर्चा की है। लेकिन फिर भी लगता है कि कुछ पहलू छूट गए हैं। लता जी जैसे विराट् व्यक्तित्व को समेटने के लिए शायद हज़ारों-हज़ार पेज लगेंगे। लता जी एक प्रश्न के उत्तर में कहती हैं कि उन्हें इस बात का मलाल है कि उन्होंने गाँधी जी को दूर से खड़े होकर देखा और सुना है लेकिन कभी गाँधी जी से मिल नहीं पाईं। आज़ादी के दिन 15 अगस्त 1947 के बारे में भी लता जी ने बातें की हैं।

रियाज़ के लिए अपने सबसे पसंदीदा राग के बारे में लता जी ने राग पहाड़ी का नाम लिया है और सबसे नापसंद राग के बारे में पूछने पर राग भैरवी का नाम हँसते हुए लिया है।

लता जी ने गीतकार पंडित नरेंद्र शर्मा जी को भी बहुत ही आदर के साथ याद किया है। यह कहते हुए -'पंडित नरेंद्र शर्मा के गीत ऐसे ही होते थे, उनके बारे में क्या कहना!' पसंदीदा फिल्मों के बारे में पूछने पर लता जी ने यह कहा कि मुझे हल्की-फुल्की फ़िल्में पसंद हैं, जिनमें दुखांत न होता हो। और फिर पसंदीदा अभिनेताओं में अमिताभ बच्चन की विशेष रूप से लम्बी चर्चा उन्होंने की है। हिमाचल प्रदेश में ज्वाला देवी के दर्शन अभी तक नहीं कर पाने की मलाल और मुम्बई में रहते हुए बार-बार याद आने वाली चीज़ के रूप में इन्दौर के गुलाब जामुन और दही बड़े को मिस करने जैसी कई-कई दिलचस्प और अनुसनी जानकारियों से भरी है यह पुस्तक जो वाणी प्रकाशन से प्रकाशित होकर आई है।

यतीन्द्र मिश्र की यह पुस्तक हर संगीत प्रेमी के पास होना ही चाहिए क्योंकि भारत में संगीत का मतलब लता मंगेशकर होता है और लता मंगेशकर का मतलब संगीत। लेखक को उसके श्रम हेतु बधाई।

❐❐❐

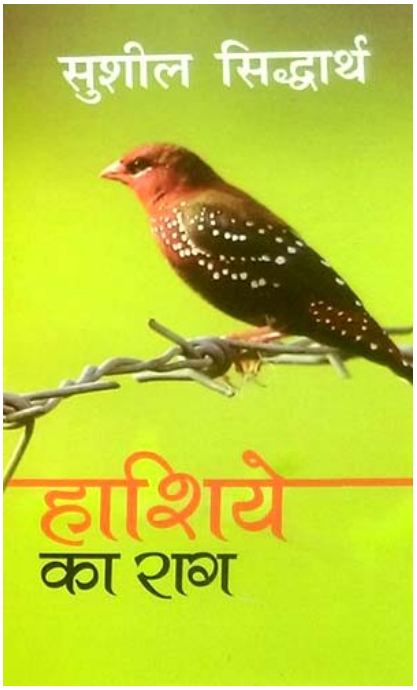


सुशील सिद्धार्थ के व्यंग्य आम व्यंग्यों की भीड़ में हमेशा ही अलग खड़े दिखाई देते हैं। सुशील सिद्धार्थ के व्यंग्य क्षमा करने या छोड़ देने का काम कभी नहीं करते, इसलिए यह व्यंग्य हमेशा जनपक्ष में खड़े दिखाई देते हैं। 'नारद की चिंता' और 'मालिश महापुराण' के बाद अब उनका तीसरा व्यंग्य संग्रह 'हाशिये का राग' किताबघर से प्रकाशित होकर आया है जिसमें उनके 44 व्यंग्य संकलित हैं। सुशील सिद्धार्थ के व्यंग्य में वाक्य बड़े सलीक़े से बनाए जाते हैं, जैसे 'मृत लेखक के लेखन में भले ही वैविध्य न हो, उससे जुड़े शोक में वेराइटी होना चाहिए।' 'राजा की चाल से ही अंदाज़ा लग जाता है कि वह कहाँ जा रहा है।' 'आदमी तीमारदारी से तब तौबा करता है जब तीमारदारी खुद एक बीमारी बन जाती है।' या फिर यह 'सच्चा दोस्त वही जो अपने दोस्त के चेहरे पर प्यार की कील ठोंक कर अपना विज्ञापन टाँग दे।' सुशील सिद्धार्थ के व्यंग्य परसाई, शरद जोशी और डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी की परंपरा के व्यंग्य हैं। गुदगुदाते भी हैं और रुलाते भी हैं। अपनी क़िस्सागो शैली और विशिष्ट भाषा के चलते यह व्यंग्य पाठक से अपने आप को पढ़वा ले जात हैं, और बार-बार पढ़वा ले जाते हैं। इस कठिन व्यंग्य समय में इस पुस्तक की आमद स्वागत योग्य है।

❐❐❐

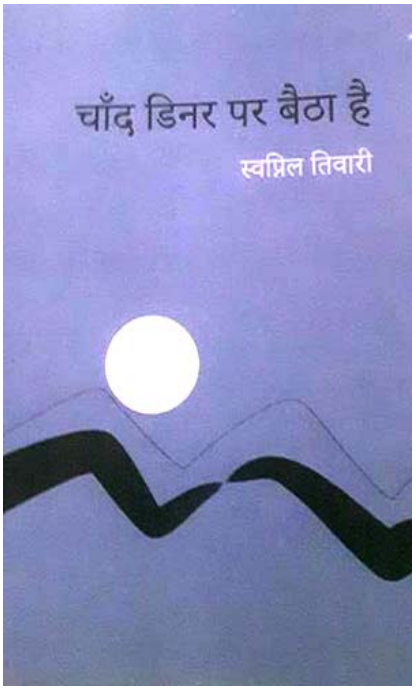


स्वप्निल तिवारी ग़ज़ल के नए चेहरों में सबसे चमकीला नाम है। स्वप्निल का ग़ज़ल संग्रह 'चाँद डिनर पर बैठा है' एनीबुक से प्रकाशित होकर आया है। स्वप्निल की ग़ज़लें नई शब्दावली लेकर आईं हैं। कई ऐसे शब्द जिनको ग़ज़ल के लिए अभी तक ठीक नहीं समझा जाता था, उन शब्दों को भी यह ग़ज़लें बहुत ही सुंदरता के साथ उपयोग करती हैं। यह ग़ज़लें पारंपरिक और आधुनिक के बीच का सेतु हैं। एक छोर पर परंपरा से जुड़ी हुईं तथा दूसरे पर आधुनिकता के साथ भी। 'उदासी से सजे रहिए, कोई रुत हो हरे रहिए', 'चलेगा वही शख़्स बाज़ार में, कोई पेंच हो जिसके किरदार में', 'चारों ओर समंदर है, मछली होना बेहतर है', 'तुमसे इक दिन कहीं मिलेंगे हम, ख़र्च ख़ुद को तभी करेंगे हम', 'एक ही ग़म तेरे जाने का रहा, एक दिन वो भी मगर जाता रहा', 'मिली है राहत हमें सफ़र से, थकन तो लेकर चले थे हम घर से' जैसी कई-कई कमाल की ग़ज़लों से यह पुस्तक भरी हुई है। लेकिन बड़ी अजीब सी बात यह है कि पूरी पुस्तक में लेखक का एक स्थान पर पर भी न तो पता दिया गया है और न ही कोई संपर्क नंबर, ईमेल आदि दिया गया है, जबकि इतनी अच्छी ग़ज़लों को पढ़ने के बाद पाठक तुरंत लेखक से बात करना चाहता है।

❐❐❐

प्रगति मैदान पर आयोजित ''नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2017'' में ''लेखक मंच'' पर दिनांक 10 जनवरी 2017 को शिवना प्रकाशन की दस नई पुस्तकों तथा पाँच चर्चित पुस्तकों के नए सजिल्द एवं पेपरबैक संस्करणों का विमोचन कार्यक्रम। उपस्थित अतिथिगण : डॉ. प्रताप सहगल, डॉ. प्रेम जनमेजय, डॉ. सुशील सिद्धार्थ तथा डॉ. प्रज्ञा।

पुस्तक विमोचन कार्यक्रम हेतु सुसज्जित मंच

मंचासीन अतिथिगण

दो व्यंग्य नाटक ( डॉ. प्रेम जनमेजय )

यायावरी यादों की... ( नीरज गोस्वामी )

यादों के गलियारे से ( सूर्यकांत नागर )

पार्थ तुम्हें जीना होगा ( ज्योति जैन )

बिसात ( राकेश बिहारी )

चाहने की आदत है ( पारुल सिंह )

प्रगति मैदान पर आयोजित ''नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2017'' में ''लेखक मंच'' पर दिनांक 10 जनवरी 2017 को शिवना प्रकाशन की दस नई पुस्तकों तथा पाँच चर्चित पुस्तकों के नए सजिल्द एवं पेपरबैक संस्करणों का विमोचन कार्यक्रम। उपस्थित अतिथिगण : डॉ. प्रताप सहगल, डॉ. प्रेम जनमेजय, डॉ. सुशील सिद्धार्थ तथा डॉ. प्रज्ञा।

विमर्श-अकाल में उत्सव ( डॉ. सुधा ओम ढींगरा )

अंतर्मन ( निर्मला कपिला )

अकाल में उत्सव-तीसरा सं. ( पंकज सुबीर )

स्मृतियों में रमते हुए ( डॉ. श्रीमती कमल चतुर्वेदी )

नक़्क़ाशीदार केबिनेट, दूसरा सं. ( सुधा ओम ढींगरा )

डाली मोगरे की.., चौथा सं. ( नीरज गोस्वामी )

101 किताबें ग़ज़लों की, दूसरा सं. ( नीरज गोस्वामी )

वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ-2 ( सुधा ओम ढींगरा )

प्रगति मैदान पर आयोजित ''नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2017'' में ''लेखक मंच'' पर दिनांक 10 जनवरी 2017 को शिवना प्रकाशन की दस नई पुस्तकों तथा पाँच चर्चित पुस्तकों के नए सजिल्द एवं पेपरबैक संस्करणों का विमोचन कार्यक्रम। उपस्थित अतिथिगण : डॉ. प्रताप सहगल, डॉ. प्रेम जनमेजय, डॉ. सुशील सिद्धार्थ तथा डॉ. प्रज्ञा।

विमर्श-अकाल में उत्सव, पेपरबैक ( डॉ. सुधा ओम ढींगरा )

अकाल में उत्सव, पेपरबैक ( पंकज सुबीर )

कवयित्री पारुल सिंह रचना पाठ करते हुए

कवयित्री निर्मला कपिला रचना पाठ करते हुए

मंचासीन अतिथिगण तथा लेखकगण

कार्यक्रम में उपस्थित अतिथिगण

युवा कहानीकार डॉ. प्रज्ञा वक्तव्य देते हुए

वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. प्रेम जनमेजय वक्तव्य देते हुए

## तरही मुशायरा
## तरही मिसरा
## 'उजाले के दरीचे खुल रहे हैं'

### नुसरत मेहदी

हमारे ग़म में वो कब घुल रहे हैं
सुना है फिर कहीं मिलजुल रहे हैं
ये किन रंगों में मौसम खुल रहे हैं
ग़मों की धूप में हम धुल रहे हैं
अभी हैं बेख़बर सिम्तों से फिर भी
उड़ानों पर परिंदे तुल रहे हैं
नहीं टूटा तअल्लुक़, ठीक, लेकिन
ग़लत कुछ फ़ैसले बिलकुल रहे हैं
अँधेरे छुप गए गोशो में जाके
उजालों के दरीचे खुल रहे हैं
असासा हैं ये तहज़ीबों के रिश्ते
दिलों के दरमियाँ ये पुल रहे हैं
मुक़द्दर है चराग़ों का ये 'नुसरत'
कि अपनी ज़ात में ख़ुद घुल रहे हैं

****

### नीरज गोस्वामी

सभी दावे दियों के खोखले हैं
अँधेरे जब तलक दिल में बसे हैं
पुकारो तो सही तुम नाम लेकर
तुम्हारे घर के बाहर ही खड़े हैं
अहा ! क़दमों की आहट आ रही है
''उजाले के दरीचे खुल रहे हैं''
है आदत में हमारी झुक के मिलना
तभी तो आपसे हम कुछ बड़े हैं
बड़ा दिलकश है गुलशन ज़िन्दगी का
कहीं काँटे कहीं पर मोगरे हैं
भरोसा कर लिया हम पर जिन्होंने
यक़ीनन लोग वो बेहद भले हैं
ग़मों के बंद कमरे खोलने को
तुम्हारे पास 'नीरज' क़हक़हे हैं

****

### तिलक राज कपूर

अंधेरे में उजाले जागते हैं
उजाले में अँधेरे सो रहे हैं
तरक़्क़ी आप जिसको कह रहे हैं
हक़ीक़त में वो झूठे आँकड़े हैं
मुखौटे हैं, खिलौने फुसफुसे हैं,
ये कैसे दीप हमने चुन लिए हैं
कभी कुछ तो हक़ीक़त में करें भी
बहुत कुछ भाषणों में बोलते हैं
मुवक्किल हम न हाकिम और न मुन्सिफ़
मसाइल क्यूँ हमारे सामने हैं
पलेवा के समय पानी नहीं था
फ़सल पकते ही बादल छा गए हैं
समय पिय से मिलन का हो रहा है
उजाले के दरीचे खुल रहे हैं

****

### 'शिफ़ा' कजगाँवी

धमाके जब से बच्चों ने सुने हैं
कलेजे माँओं के थर्रा रहे हैं
न जाने कितनी गुड़ियाँ फूँक डालीं
न जाने कितने बस्ते जल चुके हैं
लहू से सींचते हैं बाग़ ओ गुलशन
जो दहशत की तिजारत चाहते हैं
ख़मोशी वादियों की कह रही है
कि परवाज़ों के पर टूटे हुए हैं
जिन्होंने अम्न का परचम उठाया
वो ज़ुल्म ओ जौर की ज़द में खड़े हैं
किसी जानिब शफ़क़ फूटी है शायद
'उजाले के दरीचे खुल रहे हैं'

****

### सौरभ पाण्डेय

इन आँखों में जो सपने रह गए हैं
बहुत ज़िद्दी, मगर ग़मख़ोर-से हैं
अमावस को कहेंगे आप भी क्या
अगर सम्मान में दीपक जले हैं
अँधेरों से भरी धाराविषों में
कहें किससे ये मौसम दीप के हैं
सड़क पर शोर से कब है शिकायत,
चढ़ी नज़रें मुखर आवाज़ पे हैं !
प्रजातंत्री-गणित के सूत्र सारे
अमीरों के बनाए क़ायदे हैं
उन्हें शुभ-शुभ कहा चिड़िया ने फिर से
तभी बन्दर यहाँ के चिढ़ भरे हैं
उमस बेसाख़्ता हो, बंद कमरे
कई लोगों को फिर भी जँच रहे हैं
करेगा कौन मन की बात, अम्मा !
सभी टीवी, मुबाइल में लगे हैं
जला इस ओर दीपक तो उधर भी
उजाले के दरीचे खुल रहे हैं
नईफुनगी दिखी है फिर तने पर
बया की चोंच में तिनके दिखे हैं

****

### गिरीश पंकज

हमारे हाथ में नन्हें दिये हैं
अँधेरे ख़ुदकशी करने लगे हैं
उजाले ने ख़ुशी की तान छेड़ी
अँधेरे पढ़ रहे अब मर्सिये हैं
मनाए ख़ैर अब पसरा अँधेरा
मसीहा दीप ले कर चल पड़े हैं
अँधेरा बाँटते हैं जो जगत को
न जाने कैसी मिट्टी से बने हैं
चलो हम दीप उस घर भी जलाएँ
जहाँ रोते हुए बच्चे खड़े हैं
अँधेरा भाग जाएगा यहाँ से
''उजाले के दरीचे खुल रहे हैं''
बुझाना दीप है आसान 'पंकज'
जलाएँ जो, वही इन्साँ बड़े हैं

****

### डॉ. 'कुमार' प्रजापति

लगी है चोट दिल पे रो चुके हैं
कहाँ अब आँख में आँसू बचे हैं
किसी ने आपको समझा दिया है
भरोसा कीजिए हम आपके हैं
सभी मिट्टी में मिल जाएँगे इक दिन
सभी इन्सान मिट्टी के बने हैं
तमन्ना थी कि उनसे बात करते
ये हालत है कि बस चुप-चुप खड़े हैं
अभी उम्मीद है आने की उसके
अभी रौशन सितारों के दिये हैं
अँधेरे का कलेजा फट रहा है
'उजाले के दरीचे खुल रहे हैं'
'कुमार' उसको सुनाने की है चाहत
ग़ज़ल के शेर जो हमने कहे हैं

****

### मन्सूर अली हाश्मी

हमें अपने-से वो क्यूँ लग रहे हैं
कोई सपना है या हम जगे हैं
है हिन्दू भी, मुसलमाँ, सिख, इसाई
नगीने बन वतन में सब जड़े हैं
निराशा से उभर कर अब तो देखो
उजाले के दरीचे खुल रहे हैं
ये काकुल भी तुम्हारे नैन भी तो
ये तुम से ही गिला क्यों कर रहे हैं ?
तग़ाफुल है,भरम या ख़ुद पसंदी ?
खड़े हैं आईने को तक रहे हैं
कही नेता कही रावण दहन है
विचारों के पुलिन्दे जल रहे हैं
जिये हम जिसकी ख़ातिर और मरे भी
वो पहलूए रकीबाँ में खड़े हैं

****

### धर्मेन्द्र कुमार सिंह

एल ई डी की कतारें सामने हैं
बचे बस चंद मिट्टी के दिये हैं
दुआ सब ने चरागों के लिए की
फले क्यूँ रोशनी के झुनझुने हैं
उजाला शुद्ध हो तो श्वेत होगा
वगरना रंग हम पहचानते हैं
न अब तमशूल श्री को चुभ सकेगा
उजाले के दरीचे खुल रहे हैं
करेंगे एक दिन वो भी उजाला
अभी केवल धुआँ जो दे रहे हैं
रखो श्रद्धा न देखो कुछ न सोचो
अँधेरे के ये सारे पैंतरे हैं
अँधेरा दूर होगा तब दिखेगा
सभी बदनाम सच इसमें छुपे हैं

****

### दिगंबर नासवा

तभी तो दीप घर घर में जले हैं
सजग सीमाओं पर प्रहरी खड़े हैं
जले इस बार दीपक उनकी ख़ातिर
वतन के नाम पर जो मर मिटे हैं
सुबह उठ कर छुए हैं पाँव माँ के
मेरे तो लक्ष्मी पूजन हो चुके हैं
झुकी पलकें, दुपट्टा आसमानी
गुलाबी गाल सतरंगी हुए हैं
अमावस की हथेली से फिसल कर
उजाले के दरीचे खुल रहे हैं
पटाखों से प्रदूषण हो रहा है
दीवाली पर ही क्यों जुमले बने हैं
सफाई में मिली इस बार दौलत
तेरी ख़ुशबू से महके ख़त मिले हैं

****

### नवीन सी चतुर्वेदी

नयन क्यों आप के तर है रहे हैं।
ये अँसुआ तौ हमारे भाग के हैं॥
बने हौ आप जब-जब भोर के पल।
हम'उ तब-तब सुमन जैसें झरे हैं॥
तनिक देखौ तौ अपनी देहरी कों।
जहाँ हम आज हू बिखरे परे हैं॥
हृदय-सरवर मधुर क्यों कर न होवै।
किनारे आप के रस में पगे हैं॥
उलझ कें आप सों नयना हमारे।
सियाने सों दिवाने है गए हैं॥
हृदय-प्रासाद में आए हौ जब सों।
'उजाले'न के झरोखा खुल रहे हैं'॥
अरे ऊधौ हमें उपदेश दै मत।
हमारे भाग में दुखड़ा लिखे हैं॥

****

### देवी नागरानी

दिवाली के कई दीपक जले हैं
ग़ज़ल के रंग शब्दों में सजे हैं
सुमन सूरजमुखी कितने खिले हैं
'उजाले के दरीचे खुल रहे हैं'
सितारे गर्दिशों के आज़माएँ
सितम खारों के लगते फूल से हैं
चले घर से थे जिन राहों पे हम तुम
कई अनजान राहों से मिले हैं
समाए सब्ज मौसम आँखों में जो
वही सपनों की राहें तक रहे हैं
शजर कोई न था, साया न 'देवी'
सफ़र सहरा में करते जा रहे हैं

****

### डॉ. संजय दानी

फ़क़ीरी के सितम हम भी सहे हैं,
मुहब्बत की वक़ालत कर चुके हैं।
अँधेरा अब अँधेरे में रहेगा,
उजाले के दरीचे खुल रहे हैं।
पहाड़ों को बुलाना मत घरों में,
ज़मीनी धोखों से ही दिल भरे है।
विदेशी चीज़ें अच्छी लगती हैं पर,
वतन के हाट रोने से लगे हैं।
चलो दीवाली में अच्छा करें कुछ,
ग़रीबों की गली में बैठते हैं।
चलो फिर गाँव में ढूँढ़ें ख़ुशी को,
सुकूँ शहरों के बस चिकने घड़े हैं।
दगाबाज़ी का बादल ख़ौफ़ में है,
मदद के दीप हम दोनों रखे हैं।
ज़माना 'दानी' कितना भी डराए
वतन पे मरने वाले कब डरे हैं।

****

### अश्विनी रमेश

दिवाली के दिये कुछ यूँ जले हैं
उजाले झिलमिलाने-से लगे हैं
गिले-शिकवे भुलाकर लोग अपने
ख़ुशी से आज सब से ही मिले हैं
मिटा दे सब अँधेरे जो ज़हन के
उजाले यों दमक दिल के रहे हैं
दिवाली के जुनूँ में आज खोकर
पटाखे फुलझड़ी झर-झर झरे हैं
दिवारें नफ़रतों की तोड़ कर हम
उजाला प्यार का करने चले हैं
दिवाली इस कदर रोशन ये होए
मिटे रंज़िश इबादत कर रहे हैं
दिवाली बज़्म यों सजती रहेगी
हसीं अशआर के दीपक जले हैं

****

### पूजा भाटिया

हमें प्यारे वो सारे वसवसे हैं
हमारे नाम जिन में जुड़ गए हैं
हमारे अश्क तकिये पर बिछे हैं
मगर हम ख़्वाब में तो हँस रहे हैं
उसे मिलने से लेकर अब तलक हम
उसी के और होते जा रहे हैं
कहाँ तक हम फिरें सब को सँभाले
हमारे अपने भी कुछ मसअले हैं
कुछ इक दिन तो सहारा देंगे दिल को
ये ग़म पिछले ग़मों से कुछ नए हैं
ये माना शहर बिल्कुल ही नया है
मगर चेहरे सभी देखे हुए हैं
अजी हाँ प्यार है हमको तुम्हीं से
चलो जाने दो अब दस बज चुके हैं
ज़मीं पर हर तरफ़ बिखरे ये ज़र्रे
सितारे थे..अँधेरा ढो रहे हैं
ख़बर सुनते ही आने की तुम्हारे
उजाले के दरीचे खुल रहे हैं

****

### संध्या राठौर प्रसाद

उजालों के दरीचे खुल रहे हैं
दिये जो बुझ गए थे जल गए हैं
कमी ऐसी नहीं थी कोई उनमें
मगर फिर भी किसी को खल गए हैं
पुरानी शाख़ है बूढ़ा शजर है
खिले हैं फूल जो, वो सब नए हैं
थी कैसी प्यास जो आँखों में ठहरी
जहाँ देखो वहीं दरिया बहे हैं
तुझे आवाज़ दी तुझको पुकारा
तेरी यादों के घर खँडहर किये हैं
यहाँ आया है क्या सैलाब कोई
ये किसके कैसे हैं घर जो ढहे हैं

****

### गुरप्रीत सिंह

अँधेरे के ये पल कुछ ही बचे हैं
उजाले के दरीचे खुल रहे हैं
हवा बहती ग़ज़ल कहती है देखो
शजर आ कर वजद में झूमते हैं

खिलौने से पराये जैसे बच्चा
वो ऐसे दिल से मेरे खेलते हैं
न चमकाओ हक़ीक़त का ये शीशा
मेरे ख़्वाबों के बच्चे सो रहे हैं
अभी कुछ रोज़ पहले दिल है टूटा
अभी ताज़ा ही हम शायर बने हैं
हुई सीने पे बारिश आँसुओं की
तो शिकवे दिल के सारे धुल गए हैं
उजाले में जिसे खोया था हमने
अंधेरे में अब उसको ढूँढते हैं
चलो करते हैं दिल की बात दिल से
चलो चुप चाप कुछ पल बैठते हैं
ये माना ज़िंदगी इक गीत है तो
ये मानो लोग कितने बेसुरे हैं

* * * *

## दिनेश कुमार

उजाले का लिए परचम खड़े हैं
हवा में जल रहे नन्हें दिये हैं
शराफ़त का नक़ाब ओढ़े हुए हैं
अधिकतर आदमी बगुले बने हैं
नफ़ा नुक़सान अक़्सर देखते हैं
उसूलों के भी अपने क़ाइदे हैं
लगी ठोकर तो उठ कर चल दिए हैं
हमारे ख़्वाब भी चिकने घड़े हैं
सफलता पाँव भी चूमेगी इक दिन
चुनौती के मुक़ाबिल हौसले हैं
ये सच है हम भी मेंढक हैं कुएँ के
हमारी सोच के भी दायरे हैं
'प्रदूषण' के पटाखे मत चलाओ
ये सुन-सुन कान के पर्दे हिले हैं
कहाँ मिटता है भीतर का अँधेरा
अगरचे हर तरफ़ दीपक जले हैं

* * * *

## अंशुल तिवारी

अंधेरे रोशनी में घुल रहे हैं,
उजाले के दरीचे खुल रहे हैं।
ख़ुशी बिखरी है चारों ओर देखो,
दर-ओ-दीवार में गुल खिल रहे हैं।
दीवाली साथ में ले आई सबको,
पुराने यार फिर से मिल रहे हैं।
मोहल्ले में मिठाई बँट रही है,
गली में भी पटाखे चल रहे हैं।
सभी आँखों में रौनक़ छा रही है,
सुहाने ख़्वाब जैसे पल रहे हैं।
भुलाए ज़ात, मज़हब, नफ़रतों को,
मिलाए हाथ इंसाँ चल रहे हैं।
ये मंज़र देख, दिल को है तसल्ली,
हरेक आँगन में दीपक जल रहे हैं।

* * * *

## नकुल गौतम

लुटेरे मॉल सज-धज कर खड़े हैं
सनम दीपावली के दिन चले हैं
लगी दीपावली की सेल जब से
मेरी बेग़म के अच्छे दिन हुए हैं
मेरे बटुए का बी.पी. बढ़ रहा है
मेरे बच्चे खिलौने चुन रहे हैं
सफाई में लगी हैं जब से बेग़म
सभी फनकार तरही में लगे हैं
तरन्नुम में सुना दी सब ने ग़ज़लें,
मगर हम क्या करें जो बेसुरे हैं
कहाँ थूकें भला अब पान खा कर
सभी फुटपाथ फूलों से सजे हैं
यक़ीनन आज फिर होगी धुलाई
गटर में आज फिर पी कर गिरे हैं
नहीं दफ़्तर में रुकता देर तक अब
मेरे बेगम ने जब से नट कसे हैं
इन्हें खोजेंगे कमरे में नवासे
छिपा कर आम नानी ने रखे हैं
चलो छोड़ो जवानी के ये किस्से
'नकुल' अब हम भी बूढ़े हो चले हैं

* * * *

## पंकज सुबीर

पहाड़ों के मुसलसल रतजगे हैं
न जाने प्रेम में किसके पड़े हैं
ज़रा तो रात भी है ये अँधेरी
और उस पे वो भी थोड़ा साँवले हैं
जहाँ बोए थे तुमने लम्स अपने
वहाँ अब भी महकते मोगरे हैं
हमारे ज़िक्र पर उनका ये कहना
'हाँ शायद इनको हम पहचानते हैं'
फ़साना आशिक़ी का है यही बस
अधूरे ख़्वाब, टूटे सिलसिले हैं
हुआ है इश्क़ बरख़ुरदार तुमको
तभी ये आँख में डोरे पड़े हैं
है मुश्किल तो अगर दिल टूट जाए
मगर फिर फ़ायदे ही फ़ायदे हैं
कोई पागल भला होता है यूँ ही
तुम्हारे नैन ही जादू भरे हैं
कहा बच्चों से हँस कर चाँदनी ने
''तुम्हारे चाँद मामा बावरे हैं''
है अंजामे-मुहब्बत ये दोराहा
यहाँ से अपने-अपने रास्ते हैं
तेरी आँखों ने, ज़ुल्फ़ों ने, हया ने
ग़ज़ल के शेर हमने कब कहे हैं
क़ज़ा लेकर चली जब, तो लगा यूँ
'उजाले के दरीचे खुल रहे हैं'
नहीं है दिल लगा जिनका अभी तक
भला वो रात कैसे काटते हैं
बजी है बाँसुरी पतझड़ की फिर से
हज़ारों दर्द सोते से जगे हैं
फ़क़त हम ही नहीं गिनते सितारे
सुना है वो भी शब भर जागते हैं
ज़रा कुछ बच-बचा के चलिए साहब
हमारे हज़रते-दिल सिरफिरे हैं
रहे पल भर अकेला कोई कैसे
तुम्हारे घर में कितने आईने हैं
कहानी मुख़्तसर है रात भर की
कई मौसम मगर आए-गए हैं
मुकम्मल जो हुआ, वो मर गया फिर
अधूरे प्रेम सदियों से हरे हैं
दवा इतनी है मर्ज़े-इश्क़ की बस
है क़ाबू में, वो जब तक सामने हैं
नहीं कुछ लोग मरते दम तलक भी
मुहब्बत का मोहल्ला छोड़ते हैं
इन्हें सिखलाओ कोई इश्क़ करना
ये बच्चे तो बहुत सच बोलते हैं
हवा है, फिर हवा है, फिर हवा है
हमारे बीच कितने फ़ासले हैं
था दावा तो भुला देने का लेकिन
हमारा हाल सबसे पूछते हैं
इलाही ! और साँसें बस ज़रा-सी
ख़बर है घर से वो चल तो दिए हैं
दिया जाए जवाब इसका भला क्या
'हो किसके प्रेम में ?' वो पूछते हैं
है शहरे-इश्क़ से रिश्ता पुराना
यहाँ सब लोग हमको जानते हैं
''सुबीर'' उस टोनही लड़की से बचना
नयन उसके निशाना ढूँढ़ते हैं

* * * *

(यह विशेष तरही मुशायरा ब्लॉग http://subeerin.blogspot.in पर दीपावली के अवसर पर आयोजित किया गया था। बहरे मुसद्दस महज़ूफ़ अल आख़िर पर आधारित मिसरे 'उजाले के दरीचे खुल रहे हैं' पर यह सारी ग़ज़लें कही गईं। )

# शिवना प्रकाशन की चर्चित पुस्तकें

## वर्ष 2016 का चर्चित उपन्यास अकाल में उत्सव अब पेपरबैक संस्करण में भी

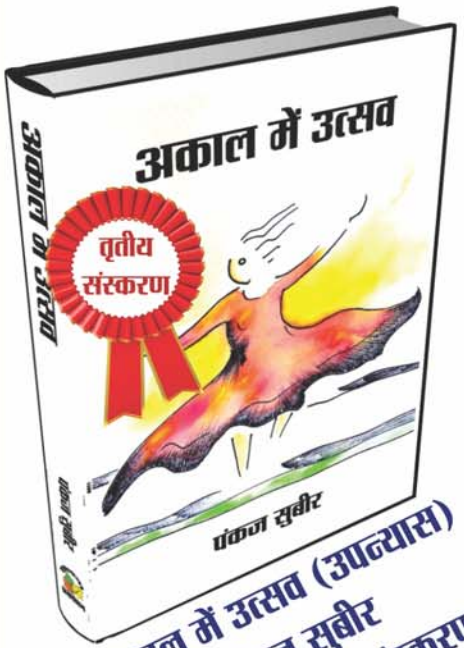


अकाल में उत्सव (उपन्यास)
पंकज सुबीर
तीसरा सजिल्द संस्करण

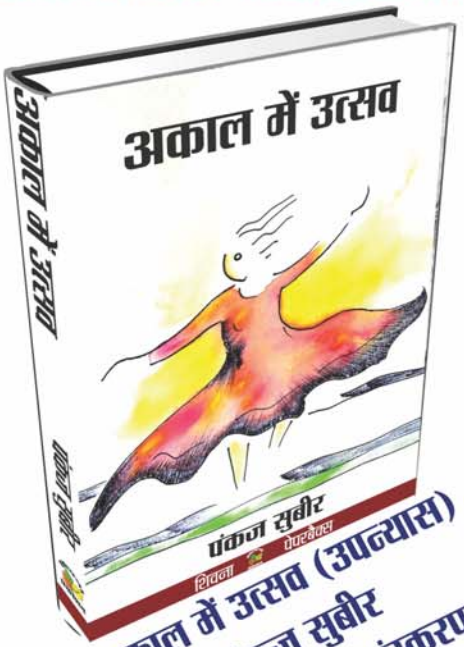


अकाल में उत्सव (उपन्यास)
पंकज सुबीर
प्रथम पेपरबैक संस्करण

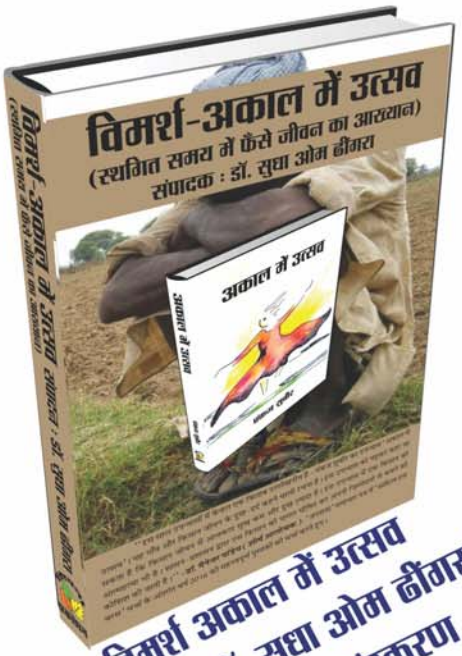


विमर्श अकाल में उत्सव
संपादक : डॉ. सुधा ओम ढींगरा
प्रथम सजिल्द संस्करण

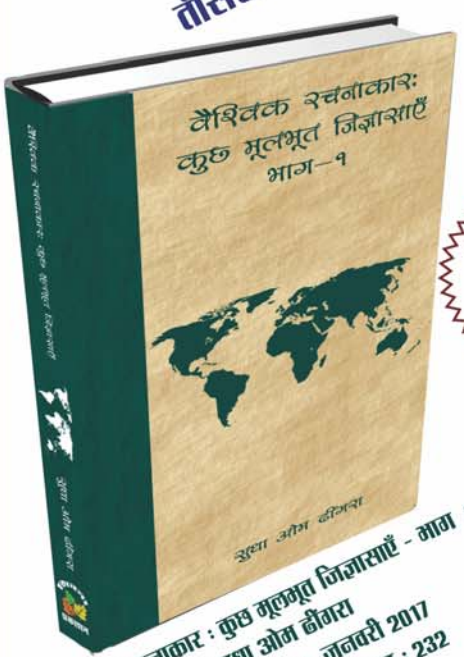


वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ - भाग 1
सुधा ओम ढींगरा
द्वितीय संस्करण : जनवरी 2017
मूल्य : 350.00 रुपये, पृष्ठ : 232

दोनों भाग
आकर्षक सेट में भी
उपलब्ध
मूल्य
750 रुपये

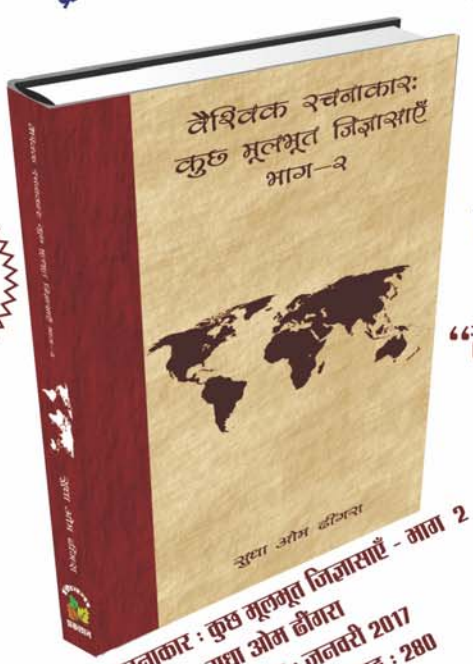


वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ - भाग 2
सुधा ओम ढींगरा
प्रथम संस्करण : जनवरी 2017
मूल्य : 400.00 रुपये, पृष्ठ : 280

विश्व भर के हिन्दी साहित्यकारों के साक्षात्कारों का अनूठा संग्रह
"वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ"
(दो भागों में)
संपादक तथा साक्षात्कारकर्त्ता :
सुधा ओम ढींगरा

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Shivna Sahityiki ● Quarterly ● Janusary-March 2017 ● RNI : MPHIN/2016/67929 ● ISSN : 2455-9717


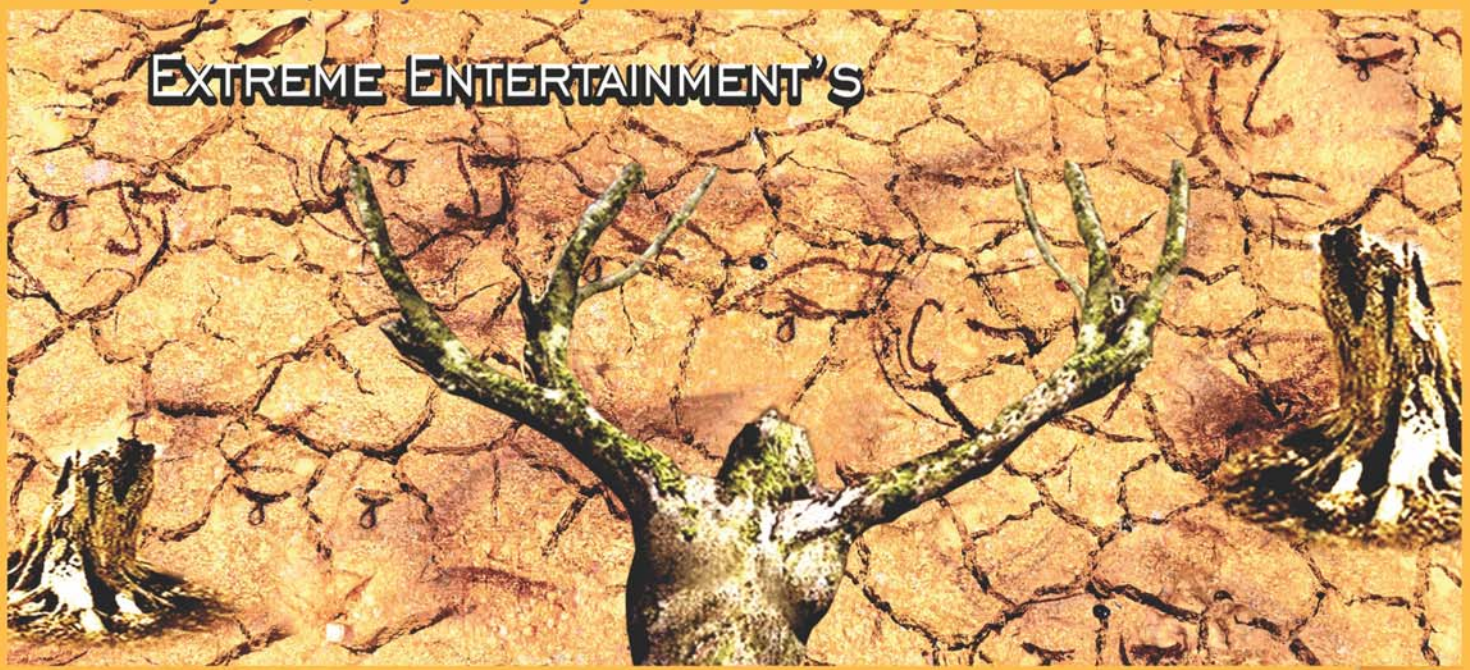


WINNER 2016

**Winner of Best Film Award at Kalyan International Film Festival 2016**

**Also Nominated in**
**1) Best Director Category**
**2) Best Lyricist Category**
**3) Best Rural Film Category**

OFFICIAL SELECTION
3rd Navi Mumbai International Film Festival-NMIFF
2016

KALYAN INTERNATIONAL KIFF FILM FESTIVAL

Official Selection
AAB International Film Festival
2016

OFFICIAL SELECTION
riff Rajasthan International Film Festival
RAJASTHAN INTERNATIONAL FILM FESTIVAL 2017

a Krishna Kant Pandya film

# BIYABAAN

The curse by women

Based on "Katha U.K." award winner DO EKANT by Pankaj Subeer

Producer: PRANAV TIWARI & JITESH PATEL Screenplay, Editing & Direction: KRISHNA KANT PANDYA Associate Producer: BHUPENDRA GHIYA
Story: PANKAJ SUBEER, KRISHNA KANT PANDYA Lyrics: PDT. VISHWESHWAR SHARMA, PANKAJ SUBEER Music: MANOJ NAYAN



**If Undelivered Please Return to :**
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184


स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।